अल हफीज कालेज, आरा, भोजपुर (बिहार)

B.A. Part-I (Hon's) सत्र - 2020-21, भूगोल विभाग के तरफ से छात्रों के लिए पठन-पाठन हेतु पाठ्य सामग्री।

डॉ० गुलाम हैदर
सहायक प्राध्यापक
भूगोल विभाग
अल हफीज कालेज, आरा
सम्पर्क :- Prof gulam haider

प्रिये छात्रों जैसा कि हम सब लोग जानते हैं कि वैश्विक महामारी कोरोना के चलते सभी स्कूल एवं महाविद्यालय मार्च माह से ही बन्द है जिसके कारण शैक्षणिक कार्य पूर्ण नहीं हो सका लेकिन महामहिम राज्यपाल ने निर्देश जारी किया है कि सभी परीक्षाएँ ससमय लिया जाए एवं छात्रों के लिये पाठ्य सामग्री कालेज के वेबसाइड पर अपलोड डाला जाय।

अतः आदेश का पालन करते हुए B.A. Part-I, सत्र 2020-21 भूगोल (Hons) के छात्रों के लिए पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराई जा रही है जिससे छात्र घर बैठे एवं सामाजिक दूरी बनाए रख कर अपनी पढ़ाई कर सकें।

धन्यवाद

Scanned with CamScanner

पाठ्यक्रम :→ स्नातक खण्ड - I भूगोल (प्रतिष्ठा)

समय : 3 घण्टा

पाठ्यक्रम पाँच Unit में विभक्त है। प्रत्येक Unit में दो प्रश्न निर्धारित है। प्रत्येक Unit में कम से कम एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कुल पाँच प्रश्नों का उत्तर देना है।

प्रथम पत्र पूर्णांक - 100

समय - 3 घण्टा भौतिक भूगोल

Unit - I :- (a) - तारा मण्डल की उत्पत्ति Laplase Kant, Jeons Jeffery, Chamberlin और Moriten.
(b) - पृथ्वी की आन्तरिक बनावट।
(c) - भूसंतुलन पर प्रैट एवं ऐरी के विचार।

Unit - II :- (a) - पर्वत के बनावट के सम्बन्ध में कोबर एवं होम्स का विचार।
(b) - वेगनर का महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धान्त।
(c) - प्लेट विवर्तनिकी।
(d) - वलन और भ्रंशन द्वारा उत्पन्न स्थलाकृति।

Unit - III :- (a) सामान्य अपरदन चक्र।
(b) स्थलीय अतिशुष्क व ऊसर।
(c) हिमनदीय।
(d) कार्स्ट एवं ज्वालामुखी स्थलाकृति।

Unit - IV :- (a) वायुमण्डल का संगठन एवं संरचना।
(b) वायुराशियों का वर्गीकरण।
(c) थार्नवेट तथा कोपन का जलवायु वर्गीकरण।

Unit - V :- (a) महासागरीय जल की लवणता।
(b) महाद्वीपीय मग्न तट।
(c) ढाल तथा गंभीर सागरीय मैदान व निर्माण एवं विशेषता।
(d) अटलान्टिक तथा हिन्द महासागर के नितल उच्चावच।
(e) महासागरी निक्षेप।
(f) प्रवाल भित्ति।

पुस्तक :- भौतिक भूगोल - सविन्द्र सिंह

Scanned with CamScanner

पाठ्य क्रम

स्नातक खण्ड - I भूगोल (प्रतिष्ठा)

द्वितीय पत्र

समय - 3 घण्टा

पूर्णांक - 100

एशिया - प्रादेशिक अध्ययन

इस पत्र में पांच यूनिट है। प्रत्येक यूनिट से दो पत्र निर्धारित है। छात्रों को प्रत्येक यूनिट से एक एक प्रश्न का उत्तर देना है।

Unit - I :- एशिया का :- प्राकृतिक बनावट, संरचना, जलवायु और प्राकृतिक वनस्पति।

Unit - II :- खनिज एवं शक्ति के संसाधन, जनसंख्या और उसकी समस्याएँ, कृषि जलवायु क्षेत्र,

Unit - III :- चीन का :- धरातल स्वरूप, कृषि, खनिज, औद्योगिक विकास, जनसंख्या।

Unit - IV :- जापान का :- कृषि, मत्स्य, औद्योगिक विकास और क्षेत्र, जनसंख्या।

Unit - V :- भूआकृति, जलवायु, कृषि, उद्योग एवं जनसंख्या :
(i) नेपाल
(ii) बंगलादेश
(iii) पाकिस्तान
(iv) श्रीलंका
(v) इराक

पुस्तक :- एशिया का भूगोल - मेमोरीया

Scanned with CamScanner

पाठ्य सामग्री
प्रथम पत्र
(भौतिक भूगोल)
Unit-I
पृथ्वी की आन्तरिक बनावट

Gulam Haider

(i) 7-36 (A)

Enternal Structure of the Earth

भूगर्भ पृथ्वी का सबसे बड़ा रहस्य है। चूंकि पृथ्वी का आन्तरिक भाग भूगोल के विषय से बाहर है लेकिन भू पृष्ठ चूंकि भूगोल का ही अंग है अतः उसकी जानकारी हमारे लिए जरूरी हो जाती है। पृथ्वी का आन्तरिक भाग हमारे लिए अदृश्य है इसी कारण इसकी सही जानकारी लगाना बहुत ही मुश्किल तो नहीं फिर भी कठिन हो जाती है। प्रारम्भिक अवस्था में पृथ्वी तरल थी लेकिन धीरे-2 वह ठोस अवस्था प्राप्त करने लगी इस क्रिया का उदाहरण → "दूध को कड़ाही में जितना ही गर्म किया जाएगा और ठंडा होने पर उस पर पपड़ी जम जाएगी" ठीक उसी प्रकार पृथ्वी पर भी पपड़ी पड़ी जिसे आज हम भू पृष्ठ कहते हैं।

पृथ्वी की आन्तरिक भाग ठोस है या द्रव है इस बारे में विद्वानों में मत भेद है। कुछ विद्वान इसको द्रव्य अवस्था में मानते हैं और कुछ ठोस अवस्था में, लेकिन कुछ ऐसे प्रमाण हैं जिनके आधार पर पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के बारे में पता चलता है।

ज्वालामुखी उद्गार :→ ज्वालामुखी के उद्गार से जो तरल पदार्थ निकलता है उससे पता चलता है कि पृथ्वी की आन्तरिक भाग द्रव्य अवस्था में है।

उल्का पिण्ड :→ पृथ्वी की उत्पत्ति के समय जो छोटे-2 टुकड़े इससे उड़ चले गये थे वे असंख्य पृथ्वी पर गिरते हैं ये उल्का पिण्ड कही हैं जिसमें लोहे और निकेल जैसी कड़ी है। इससे पता चलता है कि पृथ्वी की आन्तरिक संरचना ठोस अवस्था में है।

दबाव :→ ऊपरी परत निचली परत पर दबाव डालती है कोई भी वस्तु पर अधिक दबाव डाला जाय तो एक निश्चित सीमा के बाद वह नहीं दबती। इस तरह पृथ्वी के आन्तरिक भाग में इतना दबाव है कि वह पिघलकर फैल नहीं सकती अतः वह ठोस अवस्था में ही है कैवेन्डिस ने पृथ्वी की औसत घनत्व 5.48 माना है।

पृथ्वी की आन्तरिक संरचना

पृथ्वी की आन्तरिक भाग को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से बांटा है। अतः जिस तरह प्याज की छिलकों में परतें पाई जाती हैं ठीक उसी प्रकार पृथ्वी के अन्दर भी परतें पाई जाती हैं।

प्रो० जैकरे, प्रो० होम्स, प्रो० ग्लाक्स, प्रो० स्विस के अनुसार → इन विद्वानों ने पृथ्वी की आन्तरिक भाग को चार भागों में बांटा है जो इस प्रकार है →

(1) ऊपरी परत या Sial :→ यह पृथ्वी की सबसे ऊपरी परत है। यह मुख्यतः सीलिका (Silica) और Almuniam के मिश्रण से बनी है इस लिए इसे Sial कहा गया है। इस परत की मोटाई 50 से 300 K.m है। इस परत में प्रधान या लम्बी लहरों की गति $3\frac{1}{2}$ मी० प्रति सेकेण्ड है, और आड़ी लहरों की गति $2\frac{1}{2}$ मी० प्रति सेकेण्ड है। इसका सापेक्षिक घनत्व 2.7 है अर्थात यह जल से 2.7 गुणा भारी है। यह महादेशों में फैला है। पृथ्वी की अन्य परतों से इसमें भूकम्प लहरों की गति धीमी है।

(2) बीच की परत (Sial & Sima) :→ यह परत Sial से निचे है। यह परत ~~Alumina~~ Almuniam, Silica और Magnesium के मिश्रण से बनी है इस परत की मोटाई 30 K.m. है। इस परत में लम्बी या प्रधान लहरों की गति $4\frac{1}{2}$ मी० प्रति सेकेण्ड है। आड़ी लहरों की गति $2\frac{1}{2}$ मी० प्रति सेकेण्ड है। इस परत की आपेक्षिक घनत्व 3 है। अर्थात यह जल से तीन गुणा भारी है।

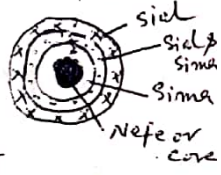

(3) निचला परत (Sima) :→ यह पृथ्वी का सबसे निचला परत है। यह मुख्यतः Silica और Magnesium द्वारा बनी है। इस लिए इसे Sima कहते हैं। इस परत की मोटाई 1000 से 2000 K.m है। इस परत में लम्बी या प्रधान लहरों की गति $4\frac{3}{4}$ K.m. है। और आड़ी लहरों की गति $2\frac{3}{4}$ है। इस परत का आपेक्षिक घनत्व 3.4 है। अर्थात यह जल से 3.4 गुणा भारी है। इस परत में पैरीडोटाइट चट्टानों की अधिकता है।

(4) केन्द्रीय परत (NiFe or Core) :→ यह परत पृथ्वी की सबसे बीच की परत है। इसकी मोटाई 6880 K.m है। इसमें प्रधान या लम्बी लहरों की गति 1800 मीटर प्रति सेकेण्ड है। इस परत का आपेक्षिक घनत्व 11 है अर्थात यह जल से 11 गुणा भारी है। इस परत की

Scanned with CamScanner

व्यास 6920 मील है। इस परत को गुरुमण्डल भी कहते हैं।

डेली के अनुसार पृथ्वी की परत :→ डेली महोदय ने पृथ्वी की परत को तीन भागों में बांटा है

(1) बाहरी परत :→ यह सीलिकेट से बनी है। इसकी मोटाई 1600 K.m. है। और इसका आपेक्षिक घनत्व 3 है। अर्थात यह जल से तीन गुणा भारी है।

(2) मध्यवर्ती परत :→ यह लोहे एवं सिलिकेट से बनी है। इसकी मोटाई 1280 K.m. है। इसका आपेक्षिक घनत्व 4.9 से 9 है अर्थात यह जल से 4.9 से 9 गुणा भारी है।

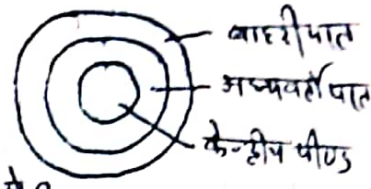

(3) केन्द्रीय भाग :→ यह पृथ्वी का सबसे बीच का भाग है। इसका व्यास 7040 K.m. है। इस भाग का घनत्व 11.6 है। अर्थात यह जल से 11.6 गुणा भारी है। यह परत लोहे से बनी है।

जेफरी के अनुसार पृथ्वी की आन्तरिक संरचना :→ इन्होंने पृथ्वी की आन्तरिक भाग को चार भागों में बांटा है।

(1) प्रथम या बाह्य परत :→ यह परत परतदार चट्टानों से निर्मित है।

(2) द्वितीय परत : → यह ग्रेनाइट चट्टानों से निर्मित है।

(3) तृतीय या मध्यवर्ती परत :→ यह टैचीलाइट अथवा डायोराइट से निर्मित है।

(4) चतुर्थ या अन्तिम परत :→ यह डुनाइट, पेरीडोटाइट तथा इक्लोजाइट से बनी है।

भूकम्प लहरों के आधार पर पृथ्वी का आन्तरिक भाग :→ पृथ्वी के संरचना के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि पृथ्वी की परतें और उनकी गहराई के सम्बंध में कोई स्पष्ट मत नहीं है। इस समस्या के निदान हेतु भूकम्प की लहरों के आधार पर पृथ्वी के परतों का एक सरल रूप प्रस्तुत किया जा सकता है, जो निम्न प्रकार है। →

(1) स्थल मंडल (Lithosphere) :→ इस में ग्रेनाइट, एल्युमिनियम और सिलिका पाया जाता है, इसकी मोटाई 100 K.m. है। इस परत की घनत्व 5.6 है।

(2) पाइरोस्फीयर :→ (Pyrosphere) :→ यह एक मिश्रित परत है। इसमें बेसाल्ट की प्रधानता है। इस परत की मोटाई 2880 K.m. है। इसका घनत्व भी 5.6 है।

(3) बैरीस्फीयर (Barysphere) :→ इस परत में लोहे और निकेल की प्रधानता है। इस परत की मोटाई 2280 K.m. है। इसका घनत्व 8 से 11 है।

Scanned with CamScanner

पाठ्य सामग्री

प्रथम पत्र :- (भौतिक भूगोल)

Unit - I

भूसंतुलन पर प्राट एवं एरी के वि[चार]

(1) **Isostasy** (4)

भूपटल पर पर्वत, पठार, मैदान, झीलें तथा महासागर आदि पाये जाते हैं, जिनके आकार में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। किन्तु ये आकृतियाँ एक निश्चित नियम के अनुसार संतुलित हैं। अन्यथा इनका वर्तमान रूप में स्थित रहना कठिन होता। जब कभी इस संतुलन में परिवर्तन होता है तो भयंकर भू हलचल तथा भू परिवर्तन होता रहता है।

इस प्रकार सामान्य रूप में संतुलन का अर्थ - परिभ्रमण करती हुई पृथ्वी के ऊपर स्थित भागों (पर्वत, पठार, मैदान) एवं गहराई में स्थित भागों (झील, समुद्र आदि) में यांत्रिक अथवा यान्त्रिक स्थिरता की दशा को ही संतुलन की दशा कहते हैं।"

"Isostasy simply means a mechanical stability between the upstanding parts and low lying basins on a rotating Earth."

(Isostasy शब्द ग्रीक शब्द आइसोस्टेसियस (Isostasios) से लिया गया है, जिसका तात्पर्य समस्थिति (In equiposia) होता है।)

"संतुलन क्षेत्र में कार्य बहुत पहले 1859 में ही प्रारम्भ हो गया था। किन्तु संतुलन (Isostasy) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अमेरिका के प्रसिद्ध भूगर्भ वेत्ता डट्टन ने 1889 में किया था। डट्टन का मत था कि पृथ्वी के ऊंचे उठे पर्वत, पठार, मैदान, सामुद्रिक तली के नीचे स्थित पदार्थ का भार बराबर होगा।

संतुलन सिद्धान्त का प्रतिपादन।

संतुलन के सिद्धान्त का विचार आचानक ही भूगर्भ वेत्ताओं के मस्तिष्क में आया। सन् 1859 में सिंधु गंगा के मैदान के भागों के निर्धारण हेतु भू-सर्वेक्षण हो रहा था उस समय कल्याण तथा कल्याणपुर नामक दो स्थानों का अक्षांशीय माप त्रिभुजीकरण (Triangulation) तथा खगोलीय विधि (Astronomical method) के अनुसार लिया गया तो दोनों मापों में 5.236" सेकेण्ड का अन्तर आया। एयरी महोदय के अनुसार इस अन्तर का कारण हिमालय पर्वत की निकटता थी क्योंकि हिमालय उनकी आकर्षण शक्ति से पेंडुलम को आकर्षित कर रहा था। कल्याण उत्तरी हिमालय से 60 मील (96 K.m) दूर गंगा के मैदान में तथा कल्याणपुर दक्षिण में था।

डट्टन - The world Isostasy was first used by the American geologist Dutton in 1889 to express his conception of a state of Balance which he thought must exist between Large up standing ares of the Earth Serface mountation renges and plateu and Contiguous low land Etc

होम्स :→ संतुलन की वह दशा जो स्थल के बड़े भागों में पायी जाती है जो विभिन्न तल पर पर्वत, पठार एवं मैदान आदि के रूप में फैले रहते हैं, संतुलन कहलाती है।"

जोन्स : स्टीयर्स :→ पृथ्वी के धरातल पर जहाँ कहीं भी संतुलन विद्यमान है समान धरातलीय क्षेत्रों के नीचे पदार्थ की मात्रा (mass) भी समान होगी।"

Scanned with CamScanner

प्राट

सन 1855 ई० में भारत के उत्तरी मैदान का भू सर्वेक्षण करते समय प्राट ने यह देखा कि साहुल रेखा धरती की तरफ लम्बवत नहीं लटकती वरन् वह कुछ उत्तर की तरफ झुक जाती है। इसके अतिरिक्त दोनों स्थान कल्याणा एवं कल्याणपुर एक ही अक्षांश में स्थित होने पर भी त्रिभुजाकार विधि एवं खगोलीय विधि से दोनों विधियों से 5.236" सेकेण्ड का अन्तर मिला। अतः प्राट ने सर्वप्रथम यही सोचा कि हिमालय की भारी चट्टानों ने इसको अपनी ओर खींच लिया है। इन्होंने हिमालय पर्वत को (डबल रोटी) से समान उठा आकार। 15.885" अन्तर 15

अतः इन्होंने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये — (i) इन्होंने बताया कि जो भाग जितना ऊपर है उसका घनत्व उतना ही कम है, लेकिन जो भाग जितना नीचे है उसका घनत्व उतना ही अधिक है।

(ii) पर्वत भारी पदार्थ से निर्मित हैं ऐसा न होकर इसके विपरीत पर्वतों का पदार्थ हल्का होता है। यह सियाल से निर्मित है।

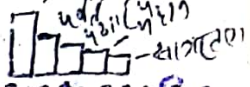

(iii) इन्होंने बताया कि पर्वत के नीचे के पदार्थ हल्के हैं, लेकिन मैदानों के नीचे पदार्थ भारी हैं और उस पर निरन्तर दबाव होने के कारण वह धसकती है और पहाड़ को ऊपर ढकेलती है। यही कारण है कि पहाड़ों के कटाव होने के बावजूद वही ऊंचे ही रहते हैं जैसे —

(iv) सन्तुलन तल एक है

अतः इस सिद्धान्त को और स्पष्ट करने के लिए प्राट महोदय ने सिद्धान्त के प्रमाण में सिद्ध किया कि ऊंचे स्तम्भों की समानता छोटे स्तम्भों के अधिक घनत्व से कम होता है। इसी कारण ऊंचे और नीचे भाग का दबाव संतुलन रेखा पर एक समान होता है। भूपटल के हल्के भागों की तुलना जस्ता और चाँदी के टुकड़ों से भारी हिस्सा की तुलना सोना और सीसा जैसी भारी वस्तु से की जाती है। यह भिन्न भिन्न भार के धातु के टुकड़े यदि पारा में बर्तन में इस प्रकार तैरते दिया जाय कि इनका डुबाव पारे में समान गहराई में हो तो, समभार लाने के लिए प्रत्येक टुकड़े को छोटा या बड़ा होना पड़ेगा। यह टुकड़ा छोटे टुकड़े की अपेक्षा पारे से अधिक बाहर निकला होगा।

आलोचना — बहुत से विद्वानों ने प्राट के उपरोक्त मत का विरोध किया और कहा कि भूपटल के भागों का वितरण कालमार के स्तम्भों में नहीं मिलता जैसा कि उदाहरण भिन्न भिन्न धातुओं का दिया गया है।

एयरी

सर एयरी ने 1859 में अपना मत व्यक्त किया था। एयरी महोदय ने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए प्रमुख बातें कहीं जो इस प्रकार हैं —

(1) सियाल सिमा पर तैर रहा है जिसकी संतुलन नाव से की है (2) जितने भी स्तम्भ हैं जो वह ऊंची हो या नीची उनका घनत्व एक ही है (3) जो स्तम्भ जितना ऊपर है उसका 9 वाँ भाग पृथ्वी में धंसा है, जिसका उदाहरण उन्होंने बर्फ के टुकड़े से दी है।

एयरी के अनुसार पृथ्वी की पपड़ी अधिक घनत्व वाले अध:स्तर में तैरने के कारण सियाल सीमा पर तैर रहा है। अतः हिमालय की भीतरी भाग खोखला नहीं हो सकता। यह हिमालय भारी गलनशील मैग्मा में तैर रहा है जो काफी नीचे तक धंसा है। जिसकी समानता पानी में चलने वाली नाव से की है बर्फ के टुकड़े का 9 वाँ भाग पानी में रहना जरूरी है इसी प्रकार महाद्वीप का औसत घनत्व 2.67 भाग नीचे रहना जरूरी है। अतः हिमालय की औसत ऊंचाई 30 हजार फिट है तो 2 लाख 70 हजार फिट तक का भाग हल्के पदार्थ का होगा।

इस प्रकार एयरी ने हिमालय में वास्तविक आकर्षण शक्ति होने के फलस्वरूप वह नीचे के जड़ के ऊपर के पदार्थों को रोके हुए है। अतः जो भाग कम ऊंचा होगा उसका कम भाग डूबा होगा। अतः गहराई में अन्तर होने के कारण को स्पष्ट करने के लिए एयरी महोदय ने विभिन्न आकार की लोहे की टुकड़ों को पारे से भरे बर्तन में डुबोकर प्रमाणित किया कि गहराई में अन्तर उसके घनत्व को लेकर है।

Scanned with CamScanner

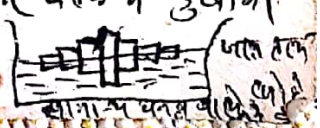

निष्कर्ष

क्रय संतुलन सिद्धांत में यद्यपि दोष पाये गये हैं, किन्तु यह ऐसे कोई तथ्यों को पूरी तरह स्पष्ट कर देता है जो अन्य किसी प्रकार स्पष्ट नहीं किये जा सकते। इसी स्पष्टीकरण के कारण कैसल एवं ओलीन आदि विद्वानों ने इसकी भरसक प्रशंसा की है। अतः यह कहा जा सकता है कि क्रय संतुलन एक सरल धारणा है और आज भी इस विषय के लोगों ने माना है।

पाठ्य सामग्री

प्रथम पत्र :- (भौतिक भूगोल)

Unit - II

पर्वत के बनावट के सम्बन्ध में कोबर एवं होम्स का विचार

786

(2.1)

Theory of Mountain Building - Geosynclinal (Cover)

(कोबर का पर्वत निर्माणक भूसन्नति सिद्धान्त)

पर्वत निर्माण के सम्बंध में विभिन्न विद्वानों ने अपने अलग-2 सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। इन सिद्धान्तों को दो वर्गों में रखा जाता है, प्रथम वर्ग के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों को रखा जाता है, जिसके अनुसार भू-पटल पर पर्वतों का निर्माण धरातलीय क्षैतिज संचलन के कारण भूपटल में सिकुड़न एवं वलन होने से होता है, दूसरे वर्ग के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों को सम्मिलित किया जाता है, जिसके अनुसार पर्वत का निर्माण, लम्बवत संचलन के कारण होता है।

भूसन्नति (Geosyncline) पृथ्वी की पपड़ी का वह सबसे कमजोर, लम्बे तथा अपेक्षाकृत सँकरे जल वाला भाग होते हैं, जिसमें प्राप्त किये हुये पदार्थों या निक्षेपों की तहों पर तहें या पर्त-दर-पर्त जमने के उपरान्त जब भौगर्भिक क्रियाओं के फलस्वरूप उन पदार्थों पर बढ़ोतरी होती है तो कालान्तर में यहा धीरे-2 पर्वत माला की उत्पत्ति होती है, तो उसे भू सन्नति द्वारा पर्वतों का निर्माण कहते हैं।
(Out of the Geosyncline have Come the Mountain or Mountain have Come out of the Seas)

भूसन्नति के विकास के लिए निम्नलिखित भौगोलिक दशाओं की आवश्यकता पड़ती है:→

(i) लम्बे, संकीर्ण तट जिसमें समय-2 पर अवसादों की मोटी एवं भारी तहें एकत्रित होती रहें।
(ii) इन लम्बे, संकीर्ण तट के समीपवर्ती भागों में ऐसे प्रदेश हो जिनका क्षरण होने से पदार्थ का एकत्रीकरण इन संकीर्ण एवं लम्बे आगारों में होता रहे।
(iii) निक्षेप के भार से सागर की पेंदी खिसकती रहे तथा उसमें अवसादों का अवतलन (Sub Sidence) होता रहे जिससे संतुलन की स्थिति बनी रहे।

कोबर महोदय का सिद्धान्त संकुचन क्रिया पर आधारित है। उन्होंने धरातल का गहन अध्ययन के बाद यह बताया कि पृथ्वी के अति प्राचीन भू-भाग जैसे — रूस, चीन, साइबेरिया, भारत, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्राजील, अफ्रीका एवं अन्टार्कटिका कभी एक दूसरे के पास स्थित थे, लेकिन संकुचन के कारण जो निचला क्षेत्र था वे ऊपर की ओर पर्वत के रूप में उठ गये। **कोबर** का मानना है कि भू-अभिनतियों द्वारा जमा किये गये अवसाद के द्वारा ही पर्वतों की रचना होती है। इसके विचार भू-अभिनतियों के विषय में दूसरों की तुलना से भिन्न हैं। इनके अनुसार भू-अभिनति लम्बी, चौड़ी विस्तृत द्रोणी थी और इसके दोनों तरफ के अग्रवर्ती क्षेत्र दो जबड़ों की तरह एक दूसरे के समीप आये, जिसके कारण उनके बीच में स्थित निचला क्षेत्र के दबाव में खिंचाव हुआ। इस खिंचाव के परिणाम स्वरूप आगे वाले क्षेत्र के दोनों किनारों पर जो श्रेणियाँ बन गयी, क्योंकि आगे वाला क्षेत्र दूसरे की तुलना में अधिक गतिशील था। इन दोनों किनारों पर बनी श्रेणियों को इन्होंने किनारे की श्रेणियाँ (Border Ranges) कहा। अगर सम्पीडन क्रिया अधिक होती है तो दोनों ओर के आगे वाले क्षेत्र एक दूसरे के समीप आकर मिल जाते हैं, जिससे दोनों किनारों की श्रेणियाँ एक साथ मिलकर ऊँची उठ जाती हैं, जिस स्थान पर ये दोनों श्रेणियाँ मिलती हैं उसे नार्बे (Narbe) कहते हैं। आल्पस श्रेणी इसी तरह की क्रिया का उदाहरण है। जब ये दोनों ओर के आगे वाले भूखण्डों में किसी एक ही गति कम होती है तो किनारे की श्रेणियों के मध्य भाग में खिंचाव का प्रभाव नहीं पड़ता है। इस भाग को मध्य पिण्ड (Median Mass) कहा जाता है। मध्य पिण्ड के दोनों किनारों का खिंचाव हुआ अवसाद खिंचाव के कारण दोनों तरफ पलट जाता है और इसमें वलन भी पड़ जाते हैं। **कोबर** ने यूरोप के वलित पर्वतों में कई मध्य पिण्ड बताये हैं। इनके अनुसार बाल्कन प्रायद्वीप में रोडोप का पठार, तुर्की में अनातोलिया का पठार और कार्पेथियन व डिनारिक आल्पस के मध्य हंगरी का मैदान मध्य पिण्ड हैं।

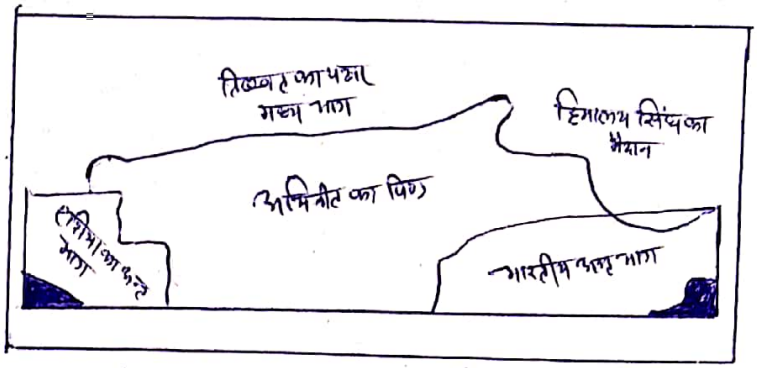

कोबर के अनुसार पर्वत निर्माण

भूसन्नति की विशेषता

(i) यह एक लम्बा, संकीर्ण क्षेत्र होता है, इसकी चौड़ाई अनिश्चित रहती है, लम्बाई 3200 K.m से कम नहीं रहती

(ii) इसका अस्तित्व कई भौगर्भिक युगों तक होना चाहिए, अप्लेशियन भूसन्नति कैम्ब्रियन पूर्व से लेकर पुराजीव काल्प तक आंका गया तथा इसी प्रकार के प्रमाण हिमालय क्षेत्र में भी आंके गये हैं। यहां पर कैम्ब्रियन से लेकर तृतीय काल्प तक भूसन्नति का अस्तित्व रहा है।

(iii) भूसन्नति महाद्वीपों के मध्य या कभी-2 समानान्तर फैली रहती है जैसे अप्लेशियन या रॉकी महाद्वीपों के समानान्तर तथा टेथिस गोंडवाना एवं अंगारा महाद्वीपों के मध्यस्थ फैली थी।

(iv) स्तर शैल की दृष्टि से परतों की तहें मोटी होनी चाहिए जिनसे स्थल भागों से अवसाद एकत्रीत होते रहे, परन्तु अवसादों की मोटाई एक समान नहीं होती है।

(v) भूसन्नति में विभिन्न प्रकार के अवसाद एकत्रित होते रहते हैं तथा अवसादीकरण क्रिया मुख्यतः छिछले सागरीय क्षेत्रों में होती है।

(vi) भूसन्नति में जहां पर पर्वत सम्मिलित रहते हैं वहां पर अपरदन क्रिया तीव्र रही होगी तथा भूसन्नति क्षेत्रों के समीप स्थल खण्डों की विद्यमानता मानी जा सकती है।

(vii) अवसादों में दबाव पड़ने से उन्नत वलितदार पर्वतमालाओं की उत्पत्ति होती है तथा जिस दिशा से शक्ति उत्पन्न होती है उसके विपरित पर्वत श्रृंखलाओं में वक्रता बढ़ती जाती है।

(viii) अवसादों के एकत्रीकरण एवं भार से पेंदी नीचे की ओर धसती है तथा भौगर्भिक हलचलों के कारण अवसाद अवतलन की अपेक्षा ऊर्ध्वगति को प्राप्त होते हैं। इसके समीप अग्रिम भू भाग स्थित होते हैं।

(ix) भूसन्नति क्षेत्रों में ज्वालामुखी क्रियाओं से बेसिन तथा आग्नेय चट्टाने मिलती हैं।

Scanned with CamScanner

प्रथम पत्र

यूनिट-II वैगनर का महाद्वीपीय सिद्धान्त

(8) 786 A

Continental drift of wegner theory.

भू-पटल के इन प्रारम्भिक स्थल रूपों की उत्पत्ति कैसे हुई? इस सम्बंध में कोई निश्चित ज्ञान प्राप्त नहीं है। पृथ्वी के उत्पत्ति के समान यह प्रश्न भी अज्ञात है। शुरू से होकर जिस अवस्था में पृथ्वी बनी इन प्रारम्भिक स्थल स्वरूपों में महाद्वीपों और महासागरों की रचना पर भी अवश्य ही प्रभाव पड़ा होगा। प्रारम्भ में इसी आधार पर महासागर, द्वीपों एवं महाद्वीपों भू-खण्डों की उत्पत्ति को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये, बाद में पृथ्वी की संरचना के सम्बंध में ज्यों-ज्यों अधिक ज्ञान प्राप्त होता गया, विद्वानों ने पृथ्वी के आन्तरिक स्तर की अवस्था के आधार पर कई नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जैसे :→

① 1875 में लोथियन ग्रीन का चतुष्फलकीय सिद्धान्त (Tetrahedron theory)
② चैम्बरलेन एवं मोल्टन का प्लेनेटीसिमल सिद्धान्त (Plante Simal theory)
③ जेफरीज का तापीय संकुचन सिद्धान्त (Thermal Contraction theory)
④ 1925 में जॉली का रेडियो सक्रियता सिद्धान्त (Radio activity theory)
⑤ 1926 में डैली का घसाव सिद्धान्त (Sliding Continental theory)
(6) 1928-29 में होम्स का संवाहन तरंग सिद्धान्त (Convectional Current theory)
(7) ~~1924~~ 1912-24 में वैगनर का महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धान्त (Continental Drift theory)
(8) ड्यू-टोइट का महाद्वीपीय प्रवाह सिद्धान्त (Continental Drift of Da-Toit)

Drift theory :→ Prof Alferd wegner जर्मनी के एक जलवायु और भूगर्भ शास्त्री थे। उन्होंने महाद्वीपों के उत्पत्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन 1912 में किया। किन्तु इससे भी पहले कई विद्वानों ने महाद्वीपों की उत्पत्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था जैसे — 1620 में Bacan, 1861 में J.H paper और 20वीं शताब्दी 1908 में Taller विशेष महत्व पूर्ण है।

वैगनर का महाद्वीपीय सिद्धान्त का प्रतिपादन 1912 में आया लेकिन उस समय प्रथम महायुद्ध के कारण वैज्ञानिकों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वैगनर का महाद्वीपीय सिद्धान्त का प्रतिपादन जब 1914 में आया लेकिन यह जर्मन भाषा में था इसके बाद 1920-22 दूसरा और तीसरा Adition छपा लेकिन यह सिद्धान्त कुछ दिनों के लिए दब पड़ गया। 1924 में Skert महोदय ने इनका महाद्वीपीय सिद्धान्त का अनुवाद जर्मन भाषा से English में किया और उसका नाम Origion of Continental & Ocean Bacen रखा तब से वैगनर का नाम लिया जाने लगा।

वैगनर ने अपने महाद्वीपीय सिद्धान्त के बारे में लिखा है → "Give me a Matter and I will Show to you how a world make of it."

वैगनर ने बताया कि कार्बोनिफेरस युग में स्थल भाग एक दूसरे से मिले हुए थे जिसका नाम पैंजिया था पैंजिया दो भागों में विभक्त था लेकिन वह एक दूसरे से अलग नहीं थे बल्कि एक गहरे सागर से अलग थे, जिसका नाम Tethys Sea था। पैंजिया चारों ओर पानी से घिरा था जिसे Panthalasa कहते थे, जो आज Atlantic महासागर है। क्रिटेशियस युग में पैंजिया (Pangia) का विभाजन शुरू होने लगा। Deffrential gravitational forse के कारण पैंजिया दो भागों में जहां West ward forse (पश्चिम की ओर) और दूसरा Equatorial forse (विषुवत रेखा की ओर)। पैंजिया जब दो भागों में था उस समय उसके उत्तरी भाग को लारेशिया और दक्षिणी भाग को गोंडवाना लैंड कहा जाता था। लारेशिया के अन्तर्गत — यूरोप, उत्तरी अमेरिका, एशिया सम्मिलित था। गोंडवाना में दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका, प्रायःद्वीपीय भारत, आस्ट्रेलिया सम्मिलित थे। लेकिन Deffrential ~~grad~~ Gravitinal forse के कारण पैंजिया का बहाव दो तरफ हुआ West ward forse के कारण उत्तरी अमेरिका यूरोप से अलग हो गया और Equatorial forse के कारण अफ्रीका से दक्षिणी अमेरिका अलग हो गया। इनके बीच पैंथलासा का बचा भाग आ गया जिसे अन्ध महासागर कहते हैं। वैगनर ने बताया कि Drift के कारण ही रॉकी एवं एण्डिज पर्वत माला का निर्माण हुआ। इसी तरह भारत और आस्ट्रेलिया अफ्रीका से इस तरह अलग होगये और इनके बीच पैंथलासा का भाग आ गया, जिसे हिन्द महासागर कहते हैं।

अतः वैगनर ने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये →

Map
सी॰ बी॰ मामोरिया
107 P.No

Scanned with CamScanner

(1)— वैगनर ने बताया कि उ० अमेरिका और यूरोप से, और दक्षिणी अमेरिका को अफ्रीका से मिलाया जाय तो आपस में ठिक ठिक बैठ जाते हैं। इसी तरह पूर्वी अफ्रीका के निकलते हुए भाग व आस्ट्रेलिया को एशिया महाद्वीप से मिलाया जाय तो वह भी बैठ जाता है, जिसकी संज्ञा Jig-saw-fit से दी है। अतः महादेश किसी समय आपस में मिले हुए थे।

(2)— वैगनर ने बताया कि अन्ध महासागर के दोनों तटों पर जो पर्वत हैं उनके फैलाव दिशा में समानता है। उन्होंने बताया कि U.S.A. और यूरोप के पहाड़ का फैलाव दिशा एक ही है। अतः यह महादेश किसी समय मिले हुए थे। तथा प्राचीन पठार उ० अफ्रिका दक्कन के पठार एवं आस्ट्रेलिया के पठार की बनावट में भी बहुत समानता पायी जाती है।

(3)— वैगनर ने अपने सिद्धान्त को और स्पष्ट करते हुए बताया कि अन्ध महासागर के विपरीत तटों पर मिलने वाले जीव और वनस्पति एक ही है। उन्होंने बताया कि अफ्रिका एवं दक्षिणी अमेरिका में मिलने वाले छोटे जीव (मेसोसोर और लेमिंग) कहीं दूसरे देशों में नहीं मिलते। इसकी हड्डी यहां दोनों तटों पर मिट्टी में मिली है। यदि ये दोनों महादेश एक दूसरे से नहीं मिले रहते तो इन दोनों ही महादेशों में एक ही प्रकार के छोटे जीव समुद्र पारकर नहीं आ सकते वे समुद्र में ही डूब जाते। अतः इस बात से उन्होंने स्पष्ट किया कि ये महादेश एक दूसरे से मिले हुए थे।

(4)— चूंकि वैगनर जलवायु विशेषज्ञ थे उन्होंने बताया कि जिन स्थानों पर उष्ण, शीत एवं शीतोष्ण कटिबंध थे उनके चिन्ह आज भी मिलते हैं।

(5)— एटलांटिक के दोनों भागों में कार्बोनीफेरस शैलों में समानता है, जिससे कोयले की खानें प्राप्त होती हैं। अतः चीन, यूरोप और U.S.A. की कोयले की पेटी कभी विषुवतीय जलवायु के प्रदेश होंगे।

(6)— वैगनर ने बताया कि पैंजिया के टूटने टुटने से महाद्वीप पश्चिम और उत्तर की ओर बढ़े, जिसका उदाहरण आज भी मिलता है। ग्रीन लैण्ड धीरे-2 उ० अमेरिका महाद्वीप की ओर बढ़ रहा है। इस बात का परीक्षण सन 1823, 1870 और 1917 में आका गया, दूरियां नापी गयी थी, जिसका निष्कर्ष निकाला की ग्रीन लैण्ड प्रति-वर्ष 20 मीटर प्रतिवर्ष की गति से उत्तरी अमेरिका की ओर बढ़ रहा है। यद्यपि 1930 से अभी तक दोनों महाद्वीपों के मध्य की दूरी में कोई अन्तर नहीं देखा गया।

(7)— कार्बनिफेरस युग का हिम के प्रभाव के कारण ब्राजील, फाकलैंड, आस्ट्रेलिया, भारत हिम से ढके हुए थे, जिनके आज भी इन महाद्वीपों में पाये जाते हैं। वर्तमान समय में ये सब एक दूसरे से हजारों मिल दूर हैं।

आलोचना :—> अतः वैगनर ने महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त को स्पष्ट किया वहीं दूसरी ओर इसकी आलोचना भी की गयी :—

(1)— वैगनर ने बताया कि U.S.A. और यूरोप, द० अमेरिका और अफ्रीका के साथ मिलाया जाय तो आपस में बैठ जाते। लेकिन यह ध्यान से देखा जाय तो आपस में नहीं मिलते, क्योंकि अन्ध महासागर के बीच जो पहाड़ हैं, वे मिलने नहीं देते। यदि दक्षिणी अमेरिका को ठीक तरह से मिलाया जाय तो इनमें 15° का अन्तर रह जाता है। अतः Jig-saw-fit दोषी ठहराया गया।

(2)— वैगनर ने बताया कि ट्रियासिक युग में महादेश एक दूसरे से अलग हुए लेकिन उन्होंने यह नहीं बताया कि उनका किस गति के कारण और उनके भिन्न-2 समय क्या थे।

(3)— वैगनर ने बताया कि कार्बोनिफेरस युग में महाद्वीप एक दूसरे से मिले थे उनके क्या कारण थे, वे क्यों मिले थे यह नहीं बताया।

(4)— वैगनर ने बताया कि महाद्वीप पश्चिम और विषुवत रेखा की ओर खिसके लेकिन तो महाद्वीपों को विषुवत रेखा के समीप एकत्रित हो जाना चाहिए था। लेकिन J.W. evens ने स्पष्ट किया कि महादेश पश्चिम, पूर्व और दक्षिण की तरफ खिसके।

(5)— वैगनर ने बताया कि महादेशों की पश्चिम की तरफ खिसकने के लिए जब Sialic Block तह से मिलना उपर है आठ गुणा पृथ्वी के अन्दर धसे हुए हैं, जिनको खिसकने के लिए वर्तमान शक्ति से 10 गुणा शक्ति चाहिए था। ऐसी हालत में पृथ्वी की चाल ही रुक जाती।

(6)— वैगनर ने बताया कि महादेशों के खिसकने से छिछले समुद्र में जो परतदार चट्टान थे वे दबाव के कारण मोड़दार पर्वतों में बदल गये। वैगनर ने इस चित्र को स्थिर नहीं समझाया।

अतः इस objection से पता चलता है कि अभी कहीं हुई बातों को मध्यनजर नहीं माना जा सकता। आज कई दूसरे सिद्धान्त का प्रतिपादन हो चुका है। अतः इसके हेर-फेर के बाद ही माना जा सकता है।

Scanned with CamScanner

प्रथम पत्र

Unit–II

प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त

786

(प) **Plate Tectonic**

भूतल का बाहरी भाग आन्तरिक रूप से दृढ़ है, परन्तु अपेक्षाकृत पतला है। ऐसे भाग को प्लेट कहा जाता है। इसकी मोटाई 100 से 150 K.m. बतायी जाती है, जिसके अन्तर्गत क्रस्ट तथा ऊपरी मैन्टिल के ऊपरी भाग को सम्मिलित करते हैं। प्लेट की संख्या के बारे में विद्वानों में मतभेद है। W.J. Morgan ने 1968 में बताया कि प्लेट की संख्या प्रमुख रूप से 6 है — (1) यूरेशियन प्लेट (2) भारतीय प्लेट (3) अफ्रीकन प्लेट (4) अमेरिकन प्लेट (5) प्रशान्त महासागरीय प्लेट आदि तथा अन्य गौण प्लेट हैं। ये प्लेट सतत गतिशील हैं। ये एक दूसरे के सम्बंध में तथा पृथ्वी की परिभ्रमण अक्ष रेखा के सम्बंध में गतिशील होते हैं प्रत्येक प्लेट अपने घूर्णन ध्रुव (Pole of Rotation) के चारों ओर वृत्ताकार मार्ग में भ्रमण करता है। कभी एक प्लेट अपने समिपस्थ प्लेट से दूर हो जाता है और दूसरे के करीब आता है, आदि। सारी विवर्तनिक घटनाएँ प्लेट के किनारे पर घटित होती हैं, अतः प्लेट के किनारे इस दृष्टि कोण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

("प्लेट नामावली का प्रयोग सर्वप्रथम प्रयोग टूजो विलसन (Tuzo wilson) द्वारा 1965 में किया गया 1966 के बाद प्लेट प्रक्रिया (Plate mechanism) का प्रयोग आरम्भ हो गया क्योंकि प्लावन सिद्धान्त के आधार पर प्लेट की भ्रमण प्रक्रिया (Motion mechanism) को स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया जा चुका था। उदाहरण स्वरूप 1967 में मैकेन्जी तथा पार्कर ने प्लेट के संचालन का विशद उल्लेख किया। 1968 में Morgan तथा ली-पिशॉन ने प्लेट विवर्तनिकी के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला।

प्लेट- किनारे (Plate Margins)

प्लेट के किनारों को तीन प्रकारों में विभक्त किया गया है →

(i) रचनात्मक किनारा (Constructive Plate Margins) :→ जिस सीमा के सहारे दो प्लेट एक दूसरे से विपरित दिशा में गतिशील होते हैं उसे विसर्पण केन्द्र कहते हैं। इस सीमा के सहारे पृथ्वी अगाध से तप्त एवं तरल मैग्मा ऊपर आता है तथा ठोस नई क्रस्ट का निर्माण करता है। इस तरह की घटनाएँ मध्य महासागरीय कटक के सहारे घटित होती हैं। इस तरह दो प्लेट के बीच नवीन क्रस्ट का सृजन होता है, अतः इसके किनारे को रचनात्मक किनारा कहते हैं।

(ii) विनाशात्मक किनारा (Destructive Plate Margins) :→ जहाँ दो प्लेट आपस में टकराते हैं तो उनके किनारे को विनाशात्मक किनारा कहते हैं, क्योंकि जिस प्लेट की रचना भारी पदार्थों से हुई रहती है उसका किनारा मुड़कर दूसरे प्लेट के नीचे की ओर चला जाता है जहाँ पर वह नष्ट होकर गहराई में विलीन हो जाता है। इस तरह जितनी नयी क्रस्ट का रचनात्मक प्लेट किनारे के सहारे निर्माण होता है उतना भाग विनाशात्मक प्लेट किनारे के सहारे नष्ट हो जाता है ताकि पृथ्वी का आकार समवत रहे।

(iii) संरक्षी किनारे (Conservativ Plate Margin) :→ जहाँ पर दो प्लेट एक दूसरे के अगल-बगल सरक जाते हैं और उनमें आपसी अन्तःक्रिया नहीं हो पाती है वहाँ Transform भ्रंश का निर्माण होता है। ऐसे किनारे को संरक्षी किनारे कहते हैं, क्योंकि इनके सहारे न तो नये पदार्थों का निर्माण होता है और न ही पदार्थों का विनाश होता है। इस तरह की स्थिति मध्य महासागरीय कटक के पास होती है।

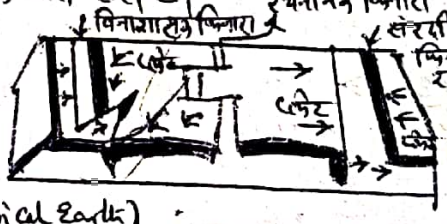

प्लेट में गति (Plate Motion)

सभी प्लेट एक दूसरे के सम्बंध में सतत गतिमान रहते हैं, अर्थात प्लेट में जो गतियाँ होती हैं, वे एक दूसरे से सम्बंधित होती हैं। जब कभी किसी प्लेट की गति या दिशा में परिवर्तन होता है तो दूसरे प्लेट में अन्यत्र परिवर्तन होता ही है। यदि प्लेट दृढ़ भाग है तथा गोलीय पृथ्वी (Spherical Earth) की सतह पर गतिशील होते हैं, तो उनकी गतियों को आयलर ज्यामिति सिद्धान्त के आधार पर व्याख्या की जा सकती है। आयलर सिद्धान्त के अनुसार — गोले की सतह पर किसी प्लेट की गति एक सामान्य घूर्णन (Simple rotation) के रूप में होती है, जो कि एक घूर्णन अक्ष के सहारे सम्पादित होती है। यह घूर्णन अक्ष गोले के केन्द्र से होकर गुजरती है। नीचे चित्र के अनुसार —

गोलीय पृथ्वी पर अब, स, धरातलीय भाग है, जो अ, ब, स तथा अ द, य दो भागों में विभक्त होता है। इन दोनों भागों का समकक्ष स्थल अ है जो कि घूर्णन अक्ष का केन्द्र भी है। घूर्णन अक्ष केन्द्र (अ) के चारों ओर वृत्ताकार मार्ग है। भौगोलिक अक्षांश तथा देशान्तर रेखाओं की

Scanned with CamScanner

बिन्दुदार रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इन्ही मार्गों के समानान्तर प्लेट की गति होती है। ~~इन्ही मार्गों के~~ घूर्णन ध्रुव (Pole of rotation) अर्थात अ के पास प्लेट की गति शून्य होती है तथा उससे दूर जाने पर बढ़ती जाती है।

प्लेट में गति के कारण (Causes of Plate Motion)

प्लेट में गति के सम्भावित कई कारणों तथा प्रक्रियाओं का उल्लेख विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया है। परन्तु अभी भी कोई प्रक्रिया या कारण सर्वमान्य नहीं हो सका है क्योंकि इसका परिमाणात्मक एवं भूवैज्ञानिक आधारों पर सत्यापन नहीं हो पाया है। अधिकांश लोग पृथ्वी के अन्दर तापीय संवहन तरंगों को प्लेट में गति का कारण मानते हैं। आर्थर होम्स ने लगभग 60 वर्ष पूर्व पृथ्वी के अन्दर से उठने वाली संवाहन तरंगों के आधार पर प्लेट में गति का प्रतिपादन भूपटल के विस्थापन के संदर्भ में किया था। कुछ विद्वानों का मत है कि कटक के पास अतिरिक्त पदार्थों (लावा तथा मैग्मा) के सृजन के कारण कटक के किनारों पर अत्यधिक गुरुत्व बल हो जाता है जिस कारण कटक से प्लेट दोनों ओर सरक जाते हैं। एक अन्य मत के अनुसार कटक के नीचे से जब मैग्मा उसमें प्रवेश होता है तो उसके कारण प्लेट कटक के अगल बगल खिसका दिये जाते हैं।

प्लेट टेक्टानिक और पर्वत निर्माण

प्लेट विवर्तनिकी सिद्धान्त के आधार पर कुछ वलित पर्वतों की उत्पत्ति स्पष्ट की जा सकी है

① → प्रशान्त महासागरीय प्लेट तथा अमेरिकन प्लेट के विनाशात्मक किनारों पर महासागरीय प्लेट का किनारा महाद्वीपीय किनारे के नीचे झुक गया है। परिणामस्वरूप महासागरी क्रस्ट के महाद्वीपीय क्रस्ट के बीच निक्षेपित (Thrust) हो जाने के कारण ~~सम्पी~~ सम्पीडनात्मक (Compressional movements) के फलस्वरूप उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी किनारे के पदार्थ वलित हो गये तथा रॉकिज एवं एण्डीज पर्वतमाला का निर्माण हुआ। उपयुक्त परिस्थिति में महाद्वीपीय तथा महासागरीय प्लेट के टकराव से पर्वत का सृजन हुआ है।

② → जब दो प्लेट के ऊपर महाद्वीपीय भाग होते हैं तो भी उनके टकराव से पर्वतों का निर्माण होता है। इसी स्थिति में आल्पाइन तथा हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं का निर्माण हुआ। लगभग 65-70 मिलियन वर्ष पहले हिमालय के स्थान पर टेथीज सागर था। इसके उत्तर में एशियाटिक प्लेट तथा दक्षिण में भारतीय प्लेट थे। भारतीय प्लेट के एशियाटिक प्लेट की ओर गतिशील होने के कारण टेथीज में संकुचन (सिकुड़न) होने लगा। लगभग 30-60 मिलियन वर्ष पूर्व इण्डियन प्लेट एशियाटिक प्लेट के करीब आ गया जिसकारण दोनों के टकराव के फलस्वरूप टेथीज की सागरीय क्रस्ट वलित हो गयी तथा हिमालय का निर्माण हुआ। इसी ~~स्थि~~ स्थिति में इण्डियन प्लेट के उत्तरी किनारे का एशियाटिक प्लेट के नीचे क्षेपण (Subducation) हो गया था। इसी तरह आल्पाइन श्रृंखला का अफ्रीका तथा यूरोप के टकराव के कारण निर्माण हुआ।

③ → जब विनाशात्मक प्लेट किनारे (Destructive Plate margins) के दोनों ओर महासागरीय नितल क्रस्ट (ocean floor Crust) होते हैं तो उनके टकराव (Collision) से एक प्लेट का सागरीय क्रस्ट दूसरे प्लेट के नीचे सागरीय बेसिन में क्षेपित हो जाता है जिस कारण द्वीप तोरण तथा द्वीप-चाप (~~Island festoon~~) के पर्वतों के निर्माण होता है। इस स्थिति का सर्वोत्तम उदाहरण जापान द्वीप-चाप ~~क्रिया~~ से लिया जाता है।

Scanned with CamScanner

प्रथम पत्र

Unit-III

सामान्य अपरदन चक्र

(4) 786 A

Normal Cycle of Erosion

Normal Cycle of Erosion का प्रतिपादन सर्वप्रथम अमेरिकन विद्वान विलियम डेविस ने किया था। इसके अनुसार अपरदन के सामान्य चक्र की व्याख्या इस प्रकार की गयी — "The Geographical cycle is the period of time during which an uplifted land mass under goes is transformation by the process of Land Sculpture ending in low feature less Plain." इस प्रकार धरातल को प्रत्येक विभाग विकास चक्र (Cycle of evolution) में होकर जाता है। सर्वप्रथम विकास चक्र का प्रयोग केवल नदी के कार्य में होता था, किन्तु अब इस चक्र का प्रयोग सभी धरातलीय साधनों में जैसे जल, हिमनद और पवन के साथ किया जाता है। इस चक्र के अध्ययन द्वारा धरातल के पूर्ण रूप का इतिहास और भविष्य का ज्ञान हो जाया करता है। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो जाया करता है कि भूतल का क्या रूप था और भविष्य में क्या रूप होगा।

प्रो० W.M. Davis के अनुसार नदी की घाटी को भौगोलिक चक्र के अनुसार चार अवस्थाओं में विभाजित किया जाता है —

(1) प्रारम्भिक अवस्था (Initeal Stage) :→ प्रारम्भिक अवस्था में नदी का निर्माण वर्षा के जल या बर्फ के पिघले जल द्वारा बने छोटे-2 बने स्रोतों के द्वारा हुआ करता है। यह पर्वतीय स्रोत तीव्र गति से बहने वाले हुआ करते हैं। इन स्रोतों के मिलने से एक विशाल जलधारा बनती है और यह कई धाराओं के मिलने से एक नदी का निर्माण होता है। पर्वतीय नदी तीव्र गति से ढलानों पर बहती है। मार्ग में अनेक शैलों को तोड़ती-फोड़ती जाती है। यह नदी साधारण बहने योग्य शैल टुकड़ों को बहा ले जाती है। इन टुकड़ों का निक्षेप नदी के पर्वतीय प्रदेश से उतरने पर हुआ करता है। प्रारम्भिक अवस्था में नदी द्वारा घाटी अंग्रेजी के अक्षर V आकार की बन जाती है। इस अवस्था में नदी का मार्ग बहुत ही टेढ़ा-मेढ़ा होता है क्योंकि मार्ग में अनेक बाधाएं मिलती हैं।

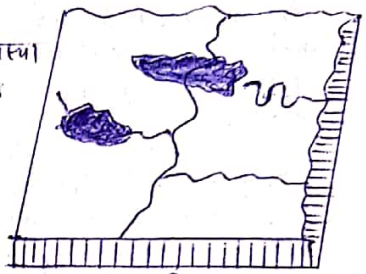

प्रारम्भिक अवस्था

(2) तरुणावस्था (Youth full Stage) :→ यह अवस्था नदी की उस समय होती है, जब वह अधिक ऊंचे पर्वतीय प्रदेश में उतर कर नीचे आती है। यह भूतल भाग भी समतल नहीं होता, यहां पर भूमि विषम होती है। मार्ग में अनेक छोटी-2 नदियाँ आकर मुख्य नदी से मिलती हैं, जिनके द्वारा मुख्य नदी का जल में वृद्धि हो जाती है। नदी की इस अवस्था में महाखण्ड (Gorges), जल प्रपात, झीलें, दल-दल और कम चौड़े जल विभाजक मिलते हैं। तरुणा अवस्था के प्रारम्भिक काल में घाटी गहरी, कम चौड़ी और अवस्था के अन्त में घाटी अधिक चौड़ी और कुछ कम गहरी हुआ करती है।

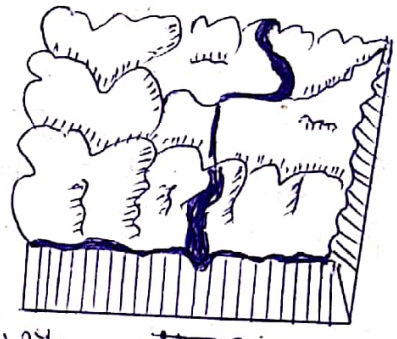

नदी की इस अवस्था में निम्न कटाव द्वारा नदी की घाटी अत्यन्त गहरी हो जाती है, जिससे नदियां संकरी तथा गहरी कंदराओं से ~~जाती है~~ होकर बहती हैं। इस कन्दराओं को गार्ज तथा कैनियन कहते हैं। इनकी गहराई चौड़ाई की अपेक्षा अधिक होती है। किनारे की दिवारें खड़ी होती हैं। इन घाटियों का आकार अंग्रेजी के V अक्षर के समान होता है। घाटियों की गहराई स्थल खण्ड के सागर तल से ऊंचाई पर आधारित होती है।

तरुणा अवस्था

(3) प्रौढ़ावस्था (Mature Stage) :→ इस अवस्था के प्रारम्भ में नदी के द्वारा अपरदन का कार्य बहुत तीव्रता से होता है। यहां नदी के वेग के साथ गहराई नहीं बढ़ती। इस अवस्था में नदी के तटों के अधिक कटाव से नदी की घाटी चौड़ी होने लगती है। इस अवस्था में ढाल के कमी होने के कारण नदी का वेग कम हो जाता है, अपरदन की अपेक्षा निक्षेप कार्य अधिक होता है। कटाव रुक जाने के कारण पार्श्विक अपरदन प्रारम्भ हो जाता है जैसे ही नदी तरुणा अवस्था के बाद ऊंची ढाल से मैदान में बहने लगती है वैसे ही ढाल के निचले भाग में जलोढ़ पंखों (Allurial fans) तथा जलोढ़ शंकुओं (Alluvial Cones) का निर्माण होने लगता है। धीरे-2 कई जलोढ़ पंख विस्तृत होकर एक दूसरे से मिल जाते हैं तथा एक विस्तृत गिरिपदीय जलोढ़ मैदान (Piedmont alluvial Plain) की रचना होती है। तरुणा अवस्था के कुछ प्रपात या झीलें नदी की मार्ग में रह गयी थी तो वे प्रौढ़ अवस्था के समय नदी के क्रमबद्ध वक्र (Graded Curve) के प्राप्ति के साथ ही लुप्त हो जाती हैं। नदियां समतल भाग में प्रवाहित होने के कारण बलखाती हुई बड़े-2 विसर्पों (Meanders) में होकर बहती हैं। निक्षेप द्वारा बाढ़ के मैदानों का सृजन होता है, जिनके ऊपर विसर्पों की स्थिति बदलती रहती है। मोड़ों के अधिक,

प्रौढ़ अवस्था

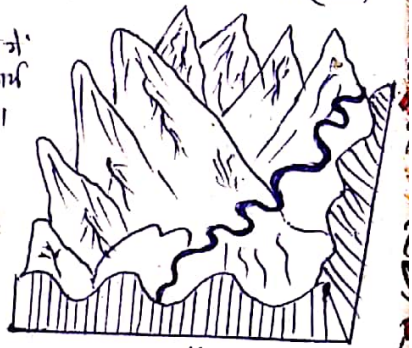

Scanned with CamScanner

घुमाव बड़ा हो जाने के कारण नदी अपने घुमाव को छोड़कर सीधी रूप में प्रवाहित होने लगती है। परित्यक्त घुमाव में जल एकत्रित हो जाता है तथा गोखुर झील या गोखुर झील (ox bow Lake) का निर्माण होता है। नदी के किनारे पर तलछटीय जमाव के कारण नदी पर तटबंधों (Levees) का निर्माण हो जाता है।

Oxbow Lake

(4) वृद्धावस्था (old stage) :→

इस अवस्था में नदी के वेग में अत्यन्त कमी हो जाने के कारण उसकी परिवहन शक्ति भी कम हो जाती है। इस अवस्था में नदी अपनी तली को थोड़ा बहुत भी नहीं काटती है। यहाँ नदी का ढलान लगभग समतल हो जाता है और नदी का तट विस्तृत और नीचे होते हैं। नदी की इस अवस्था में नदी बोझ (Load) की अधिकता होती है। परिणाम स्वरूप नदी समस्त भार का परिवहन नहीं कर पाती है, फलस्वरूप निक्षेप अधिक होता है। नदी अपने मुहाने के पास डेल्टा का निर्माण करती है तथा किनारों पर तट बंध का। इस तरह समस्त क्षेत्र अपने आधार तल को प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक कठोर तथा प्रतिरोधी शैलों के कुछ भाग विभेदक अपरदन (Differential Erosion) के कारण सामान्य सतह से ऊपर उठे रहते हैं। ये समूह न होकर छिट-पुट रूप में होते हैं, इन्हें संयुक्त राज्य अमेरिका के मोनाडनाक पर्वत के आधार पर मोनाडनाक (Monadnock) कहते हैं। उपर्युक्त सभी स्थितियाँ समप्राय मैदान (Pene plain) के विकास में सहायक होती है। इस स्थिति के प्राप्त हो जाने पर अपरदन चक्र समाप्त हो जाता है, क्योंकि जहाँ एक समय उच्च उठा था, अपरदन द्वारा पुनः नीचे पर आ जाता है।

अतः नदी का प्रथम चक्र समाप्त होकर नवीन तथा अन्य चक्र का प्रारम्भ हो जाता है। नदी वृद्धावस्था प्राप्त करते करते पुनः नये सिरे से भौगोलिक चक्र प्रारम्भ कर देती है और फिर बाल्यावस्था को पहुँच जाती है। इस प्रकार नदी के इस कार्य को Normal cycle of Erosion कहते हैं।

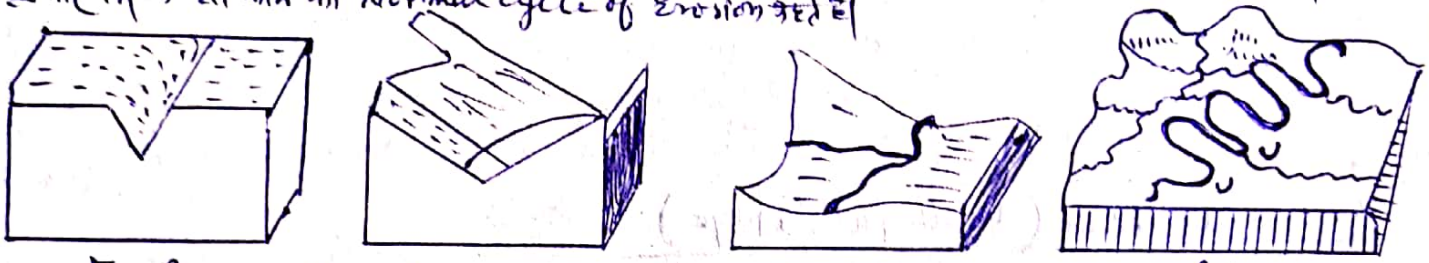

↖ नदी घाटी के विकास क्रम ↗ नदी की वृद्धावस्था

आलोचना

एक तरफ जहाँ प्रो० डेविस ने नदी के भू अपरदन के सामान्य चक्र की व्याख्या की वहीं दूसरी ओर कुछ विद्वानों ने इनके इस भू अपरदन के चक्र की आलोचना की जैसे, पेन्याल्फ, सोलिसबरी आदि।

(i) → प्रो० डेविस ने भौगोलिक चक्र शब्द के अनुसार चक्र शब्द का प्रयोग उचित रूप से नहीं किया, क्योंकि चक्र में किसी भी क्रिया का क्रम वहीं पूर्ण होता है जहाँ से आरम्भ होता है।

(ii) → नदी की घाटी की उपमा मनुष्य के जीवन से नहीं दी जा सकती। यौवनावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था आदि कह कर घाटी का वर्णन करना अत्यन्त काल्पनिक चित्र है। मनुष्य के जीवन में नदी की भाँति पुनर्युवन नहीं होता।

प्रथम पत्र

Unit – III

कार्स्ट एवं ज्वालामुखी स्थलाकृति

(B) Karast Topography (A)

चूने के पत्थर वाली चट्टानों के क्षेत्र में भूमिगत जल द्वारा सतह के ऊपर तथा नीचे विचित्र प्रकार के स्थल रूपों के निर्माण को Karast Topography कहते हैं। कार्स्ट शब्द युगोस्लाविया देश के पश्चिमी तट पर पूर्वी एड्रियाटिक सागर के तट के सहारे स्थित कार्स्ट प्रदेश से लिया गया है जिसका अर्थ चट्टान से है। यहाँ पर लाइमस्टोन शैल अधिक वलित अवस्था में है। इस लाइमस्टोन वाले कार्स्ट प्रदेश की ऊपरी सतह पर जल ने घोल द्वारा तथा निचले भाग में भूमिगत जल ने अपने अपरदनात्मक तथा निक्षेपात्मक कार्य द्वारा विचित्र प्रकार की स्थलाकृति का विकास कर रखा है। यह कार्स्ट प्रदेश 480 K.m की लम्बाई तथा 80 K.m की चौड़ाई में विस्तृत है। कार्स्ट प्रदेश में वर्षा का जल शैल-संधियों एवं दरारों द्वारा भूमि में प्रवेश करता है। इन स्थानों में जल के प्रवेश से उनकी संधियाँ चौड़ी होती जाती हैं और घुलाव क्रिया से धरातल पर क्रमशः घोल रन्ध्र, विलय रन्ध्र, लैपीज, डोलाइन, युवाला, प्राकृतिक पुल आदि की रचना होती है।

कार्स्ट स्थलाकृति का विकास दक्षिणी फ्रांस के कासेस क्षेत्र, ग्रीस, स्पेन, आस्ट्रेलिया, द० पोर्टोरिको, जमैका, पश्चिमी क्यूबा, U.S.A के दक्षिणी इण्डियाना, पश्चिमी मध्य केन्टुकी, वर्जीनिया, टेनेसी तथा मध्यवर्ती फ्लोरिडा प्रान्त। गौण क्षेत्र :- U.S.A. के न्यूमेक्सिको का कार्ल्सबाद, इंग्लैंड का चाक क्षेत्र, फ्रांस का चाक क्षेत्र, जूरा पर्वत के भाग, आल्पस तथा एपीनाइन्स पर्वत के कुछ भाग इत्यादि। इनके अलावा रूस में उत्तरी भाग, भारत में चित्रकूट श्रेणी, कश्मीर में मध्य हिमालय, कांगड़ा की घाटी, रोहतास का पठार, पेड़ा घाट, और मद्रास के कर्नूल जिले में भी ऐसे स्थलाकार देखे जाते हैं।

अतः अब हम Karast topography के अपरदन स्थल रूप एवं निक्षेप स्थल रूप का वर्णन कर रहे हैं।

1. **अपरदनात्मक स्थलस्वरूप (Erosional Land forms Topography)** :→ इसके तहत निम्नलिखित आकृति का निर्माण होता है।

(a) **लैपीज (Lapies)** :→ 1924 ई० में स्विजिक महोदय ने लैपिज के सम्बंध में बताया है कि लैपिज का विकास मुख्य रूप से घुलन क्रिया के फलस्वरूप ऊपरी सतह अत्यधिक ऊबड़ खाबड़ तथा असमान हो जाती है। इस तरह की स्थलाकृति को लैपीज कहते हैं। लैपीज का निर्माण लाइमस्टोन की खुली सतह पर जल चट्टान की संधियों को अपनी घुलन क्रिया द्वारा विस्तृत करते जाता है, जिसकारण छोटी-छोटी शिखरिकाओं का निर्माण हो जाता है। इनकी दिवारें इतनी खड़ी होती हैं कि इनके ऊपर नंगे पाँव चलना कठिन हो जाता है। लैपिज के निर्माण के सम्बंध में स्मिथ तथा आल्ब्रिटिश ने U.S.A के टेक्सास राज्य में इनकी रचना को वहाँ पर विकसित गर्तों, खन्दकों एवं गहरी तथा विस्तृत नालियों के कारण बताया।

लैपीज

लैपीज को जर्मनी भाषा में कारेन, अंग्रेजी में क्लींट (Clint), सर्बिया भाषा में बोगाज (Bogaz) और फ्रांसीसी भाषा में लैपीज (Lapies) कहा जाता है। लैपीज का उदाहरण – इंग्लैंड, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, डालमेशियन आदि।

(B) **घोल रन्ध्र (Sink Holes)** :→ चूने की चट्टान वाले प्रदेश में ऊपरी सतह पर जब वर्षा का जल आता है तो कार्बन डाई-आक्साइड गैस के साथ मिलकर वह सक्रिय घोल बन जाता है। अतः घोल चट्टान की संधियों में जल घुलकर घुलनशील तत्वों को घुलाकर निकाल जाता है। इस घुलनशील क्रिया के कारण संधियों का विस्तार हो जाने से असंख्य छिद्रों का निर्माण हो जाता है, जिन्हें घोल रन्ध्र कहते हैं। किसी भी विस्तृत Karast क्षेत्र में घोलरन्ध्र कई सौ से लेकर हजारों की संख्या में मिलते हैं। मैलट महोदय ने 1945 में द० इण्डियाना प्रान्त के Karast क्षेत्र में लगभग 300000 की संख्या में घोलरन्ध्र बताये। सामान्यतः घोलरन्ध्र कुछ मीटर से लेकर कुछ हेक्टर तक चौड़े तथा तीन मीटर से लेकर 30 मीटर तक गहरे होते हैं। इनमें कुछ कीपाकार और कुछ बेलनाकार होते हैं।

(C) **विलय रन्ध्र (Swallow Holes)** :→ घोल द्वारा घोल रन्ध्र छिद्रों का अधिक विस्तार हो जाता है, तो इस तरह के विस्तृत घोलरन्ध्र को विलय रन्ध्र कहा जाता है। घोलीकरण के फलस्वरूप इनका निरन्तर नीचे की ओर विकास होता। कालान्तर में ये इतने बड़े होते हैं कि धरातल पर बहने वाली नदियाँ इनमें प्रविष्ट होकर विलीन हो जाती हैं।

(D) **डोलाइन (Doline)** :→ घुलन क्रिया के फलस्वरूप विलय रन्ध्र का विस्तार और अधिक हो जाता है तो उसे डोलाइन कहते हैं। सामान्यतः ये 30 से 40 फुट चौड़े 6 से 75 फुट गहरे होते हैं।

डोलाइन

(E) **युवाला (Uvala)** :→ युवाला का निर्माण कई रूपों में होता है। लगातार घोलीकरण के फलस्वरूप कई डोलाइन मिलकर एक वृहदाकार गर्त का निर्माण करते हैं। इस विस्तृत गर्त को युवाला कहा जाता है। युवाला का निर्माण ऊपरी छत धस जाने के कारण भी होता है। युवाला इतने विस्तृत होते हैं कि इनके धरातलीय नदियाँ लुप्त हो जाती हैं, इनके अनेक धरातलीय घाटियाँ रुक जाती हैं। युवाला के तली में प्रायः कांप मिट्टी का निक्षेप मिलता है, परन्तु इसकी तली समतल होती है।

(F) **पोलिजे (Polje)** :→ युवाला से भी अधिक विस्तृत गर्त को पोलिजे कहते हैं इसके निर्माण के विषय में विद्वानों के बीच मतभेद है। इसके निर्माण के विषय में बताया जाता है कि लाइमस्टोन वाले क्षेत्रों में नीचे की ओर भ्रंशित भागों में घुलन क्रिया द्वारा कुछ परिवर्तन हो जाने पर पोलिजे का निर्माण होता है। इनकी फर्श भी समतल होती है तथा दिवारें खड़ी होती हैं इनकी लम्बाई 40 K.m से 64 K.m तक होती है और चौड़ाई 7 मील तक (5 से 11 K.m तक) होती है।

(G) **घाटियाँ** :→ इनके कई भेद हैं :— (i) **धसती निवेशिका (Sinking creek)** :— Karast मैदान के ऊपर इतने अधिक घोलरन्ध्र होते हैं कि समूची सतह एक चलनी के समान दिखते हैं, जिनमें घोलरन्ध्र कीप का कार्य करता है। जब छिद्रों से होकर नदी का जल नीचे चला जाता है तो उसे धसती निवेशिका कहते हैं। (ii) **अन्धी घाटी (Blind Valley)** :— जिस स्थान पर नदी का जल सतह से नीचे चला जाता है उसके आगे सतह पर नदी की घाटी शुष्क रहती है, क्योंकि इनका प्रयोग नदी अपने प्रवाह मार्ग के लिए नहीं करती क्योंकि इसका जल सतह के नीचे प्रवाहित होने लगता है। जब बाढ़ के समय जल अधिक हो जाता है तो जल नीचे आसानी से पहुँच जाता है तो छिद्र के ऊपर नदी अपनी घाटी को कार्स्ट मैदान से अधिक नीचा कर लेती है। इस अवस्था में नदी घाटी एक विलयन छिद्र पर समाप्त हो जाती इस घाटी को अन्धी घाटी (Blind Valley) कहते हैं। (iii) **कार्स्ट घाटी या घोल घाटी** :→ अधिक वर्षा के समय पृथ्वीय नदियाँ कुछ दूर तक प्रवाहित होती है तथा अपनी चौड़ी तथा U आकार की घाटी का निर्माण कर लेती है, इस घाटी को Karast घाटी या घोल घाटी कहते हैं।

Scanned with CamScanner

(H) **कन्दरा या गुफा (Cave or Caverns)** :→ भूमिगत जल के अपरदन आकृति में कन्दरा या गुफा बहुत ही महत्वपूर्ण आकृति है। जब चूना प्रदेश में निचली सतह खोखला हो जाता है और ऊपरी सतह स्थिर रहता है, तो उसको गुफा या कन्दरा कहते हैं। यह छोटे और बड़े भी होते हैं। इसका उदाहरण U.S.A. की कार्ल्स बाद कन्दरा तथा मैमथ कन्दरा अधिक महत्वपूर्ण है।

(I) **पोनोर (Ponor)** :→ पोनोर घुटका (नालिका) को कहते हैं, जो लम्बवत या कुछ झुकी हुई होती है। यह कन्दरा को विलयन छिद्र से सीधे सतह से मिलाता है। पोनोर द्वारा कन्दरा को जल मिलता है। सर्बिया में इसे पोनोर तथा फ्रांस में आवेन कहते हैं।

(J) **प्राकृतिक पुल (Natural Bridges)** :→ प्राकृतिक पुल के निर्माण में विद्वानों का मतभेद है फिर भी सामान्य रूप से प्राकृतिक पुल का निर्माण दो रूपों में होता है— (i) कन्दरा की छत धस जाने पर उसका कुछ अवशिष्ट भाग एक पुल के रूप में बचा रहता है, जिसे प्राकृतिक पुल कहते हैं। (ii) कार्स्ट प्रदेश में नदी विलयन छिद्रों से होकर लुप्त हो जाती है तो वह नीचे जाकर अपघर्षण तथा घुलन क्रिया द्वारा कन्दरा का निर्माण करती हुई पुनः सतह पर प्रकट होती है। जब कन्दरा की छत नीचे धस जाती है तो उसकी छत का शेष भाग, जो कन्दरा के दो पार्श्वों को जोड़ता है। प्राकृतिक पुल कहा जाता है। इस पर सड़के बनाई जाती हैं।

प्राकृतिक पुल का निर्माण

(K) **प्राकृतिक सुरंग** :→ नदी का मार्ग जब भूमिगत हो जाता है तो प्राकृतिक सुरंग का निर्माण होता है। इस सुरंग का प्रयोग प्रायः भूमिगत रेलों के लिए किया जाता है। जब प्राकृतिक ~~सुरंग~~ सुरंग इतनी छोटी हो जाती है कि दोनों पार्श्वों को मात्र जोड़ती है तो प्राकृतिक सुरंग कहते हैं। 2/ **परिवहन कार्य** :— यद्यपि बहते हुए जल की भाँति भूमिगत जल का परिवहन कार्य इतना महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी यह घोल के रूप में पदार्थों को बड़ी मात्रा में परिवहित करता है जब तक घुलित पदार्थों का निक्षेप नहीं हो जाता, भूमिगत जल उन्हें बहा ले जाता है। भूमिगत जल अपने घुलित पदार्थों को कभी-कभी समुद्र या झील में छोड़ देता है जिससे उनकी लवणता बढ़ जाती है। कभी-कभी ये अवसाद रूप में परतदार शैलों में निक्षेपित हो जाता है।

3/ **निक्षेपात्मक स्थल स्वरूप (Dipositional Land forms)** :→ भूमिगत जल में खनिजों की घुलने की क्षमता अधिक है। सामान्यतः इसके घोल में कैल्सियम कार्बोनेट, मैग्नेशियम, लोहा और सिलिका की मात्रा अधिक होती है। इसकी घोल में खनिजों की मात्रा अधिक हो जाने पर जल की परिवहन शक्ति क्षीण हो जाती है, जिससे खनिज का निक्षेप होने लगता है। खनिज के इस निक्षेप से अनेक रूप आकारों की रचना होने लगती है। निक्षेप के ये रूप मुख्यतः वाष्पीकरण, ताप, दबाव, गैस की कमी तथा रासायनिक क्रियाओं के कारण बनते हैं। अतः निक्षेप द्वारा निम्नलिखित रूप आकृति का निर्माण होता है।

(A) **ग्रन्थिका (Nodules)** :— कभी-कभी चट्टानों के बीच खोखली ~~जगह~~ जगहों पर खनिज घोल का निक्षेप हो जाता है जिससे खाली स्थान पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से भर जाते हैं। ऐसे निक्षेप को ग्रन्थिका (Nodules) कहते हैं।

(B) **खनिज शिराएं (Mineral veins)** :→ भूमिगत जल के घोल से निक्षेपित खनिज पदार्थों के द्वारा चट्टानों की संधि एवं दरारें भर जाती हैं जिससे चट्टानों में खनिज शिराएं बन जाती हैं। अधिकांश सोना, चाँदी, सीसा, जस्ता, टीन व ताम्बा आदि धातुएं ऐसी शिराओं में ही मिलती हैं।

(C) **स्टैलेक्टाइट (Stalactite)** :→ चूने के प्रदेशों में धीरे-धीरे रिसता हुआ जल जब भूमि में पहुंचता है तो उसमें बड़ी मात्रा में चूना आदि खनिज घुल जाते हैं। यह खनिज युक्त कन्दराओं की ~~छत से~~ छत से टपकता है। जितने समय जल की बूंद छत से चिपकी हुई रहती है उतने समय में बूंद का कुछ जल-अंश वाष्प बनकर उड़ जाता है और कुछ कार्बन गैस भी उससे अलग हो जाती है। फलस्वरूप जल में घुला हुआ चूने का कुछ अंश छत पर ही चिपका रह जाता है। प्रत्येक बूंद टपकने के साथ यही बात होती है। अतः इस क्रिया से कालान्तर में छत के आधार पर नीचे लटकते हुए चूना स्तम्भ बन जाता है। ये स्तम्भ छत की ओर मोटे एवं कन्दरा के नीचे की ओर पतले होते हैं जिसे स्टैलेक्टाइट या अधश्चुताश्म कहते हैं।

(D) **स्टैलेग्माइट (Stalagmite)** :→ कन्दरा की छत से रिसने वाले जल की मात्रा यदि कुछ अधिक होती है तो वह सीधे टपक कर कन्दरा की फर्श पर पहुंच जाता है इस तरह के फर्श पर निक्षेपात्मक स्तम्भ का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। धीरे-धीरे निक्षेप द्वारा इन स्तम्भों की ऊंचाई ऊपर की ओर बढ़ जाती है, इस प्रकार के स्तम्भ को स्टैलेग्माइट या निश्चुताश्म कहते हैं। आधार पर ये मोटे तथा विस्तृत होते हैं, परन्तु ऊपर की ओर पतले तथा नुकीले होते जाते हैं। इनकी ऊंचाई निरन्तर ऊपर की ओर बढ़ती है।

(E) **कन्दरा स्तम्भ (Cave Pillar)** :→ स्टैलेग्माइट की अपेक्षा स्टैलेक्टाइट लम्बे होते हैं। निरंतर लम्बाई में वृद्धि के कारण स्टैलेक्टाइट बढ़कर कन्दरा के फर्श पर पहुंच जाते हैं। इस तरह एक ऐसे स्तम्भ का निर्माण हो जाता है जो कि कन्दरा की छत को उसकी फर्श से मिलाता है, इस स्तम्भ को कन्दरा स्तम्भ कहते हैं। इनकी ऊंचाई 30 से 60 मीटर तक होती है। U.S.A. राज्य के न्यू मैक्सिको प्रान्त की कार्ल्सबाड कन्दराओं में ऐसे स्तम्भ हजारों की संख्या में मिलते हैं। इनमें कोई-कोई कन्दरा स्तम्भ काफी विशाल होते हैं। फ्रान्स के सेवरल मैक्सिको के जोजरी कक्ष में ऐसे स्तम्भ 25 से 30 मीटर तक ऊंचे देखे जाते हैं।

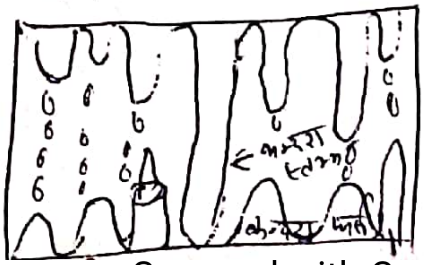

प्रथम पत्र

Unit – III

कॉर्स्ट एवं ज्वालामुखी स्थलाकृति

(20) **Volcanic Topography** (A) A

ज्वालामुखी उद्गार द्वारा निर्मित स्थल रूप स्थायी रूप वाले नहीं होते, क्योंकि प्रत्येक उद्भेदन के साथ उनकी शंकु रचना तथा अन्य रूपों में परिवर्तन होता रहता है। ज्वालामुखी क्रिया द्वारा निर्मित स्थलाकृतियाँ लावा तथा विखण्डित पदार्थ के अनुपात तथा उनकी मात्रा एवं गुणों पर आधारित होता है। ज्वालामुखी क्रिया का योग धरातल के नीचे तथा बाहर दोनों सम्पन्न होता है, अतः ज्वालामुखी स्थल रूपों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) बाह्य स्थलाकृति (Extrusive Topography)
(2) आभ्यान्तरिक स्थलाकृति (Intrusive Topography)

बाह्य स्थलाकृति :– इसको भी दो भागों में बांटा गया है — (A) केन्द्रीय विस्फोट द्वारा निर्मित (B) दरारी उद्गार द्वारा निर्मित

(A) केन्द्रीय विस्फोट द्वारा निर्मित स्थल स्वरूप :– इसको भी दो भागों में बांटा गया है – (i) उभे उठे भाग (ii) निचे धसे भाग

(i) उभे उठे भाग (Elevated form) केन्द्रीय उद्गार द्वारा तीव्र गैस तथा वाष्प, प्रवाह लावा तथा विखण्डित पदार्थों के साथ प्रकट होती हैं। इन पदार्थों के जमाव से अनेक प्रकार के शंकुओं (Cones) की रचना होती है। इन्हें उभे उठे भाग कहते हैं। ये निम्न हैं —

(क) सिंडर शंकु (Cinder or Cone) :– सिंडर कोन प्रायः कम ऊँचे शंकु होते हैं, जिनके निर्माण में ज्वालामुखी धूल तथा राख एवं विखण्डित पदार्थों का ही सहयोग रहता है, ~~जिनके निर्माण में~~ विस्फोटक गैस के उद्गार के साथ में पदार्थ छोटे आकार वाली चोटी और ये के रूप में एकत्रित हो जाती है, जिसे सिंडर शंकु कहते हैं। इनकी ऊँचाई कुछ फीट तक 400 फीट तक हो जाती है। बड़े-2 विखण्डित पदार्थ क्रेटर के पास 40° से 45° के ढाल पर होते हैं। सिन्डर शंकु का उदाहरण मैक्सिको का जोरल्लो, सान साल्वेडोर का माउन्ट इसाल्को, फिलीपाइन्स के लुजोन द्वीप का कैमिगिन है।

(ख) कम्पोजिट शंकु (Composite Cone) :→ कम्पोजिट शंकु सभी प्रकार के शंकुओं से ऊँचे होते हैं। इनका निर्माण विभिन्न प्रकार के निकले ज्वालामुखी पदार्थों के क्रमशः तह के रूप में जमा होने से होता है। इसी लिए इसे परतदार शंकु भी कहते हैं। जैसे :– संयुक्त राज्य अमेरिका का शस्ता, रेनियर तथा हुड फिलीपाइन्स का मेयान तथा जापान का फ्यूजीयामा आदि।

(ग) परिपोषित शंकु (Parasite Cone) :→ जब ज्वालामुखी शंकु का अत्यधिक विस्तार हो जाता है तो उसमें दरार हो जाने के कारण ज्वालामुखी के मुख्य छोटी या नली से छोटी-2 उप शाखाएं निकल आती हैं मुख्य शंकु के निचले भाग पर इन उप नलियों से लावा आदि पदार्थ निकल आते हैं इन्हें परिपोषित शंकु कहते हैं।

(घ) पैठिक लावा शंकु (Basic lava Cone) :→ जब लावा काफी हल्का तथा पतला होता है एवं सिलिका की मात्रा कम होता है तो लावा अधिक दूर तक फैलने के बाद जमा हो जाता है। इस कारण लम्बे स्थान का कम ऊँचे शंकु का निर्माण करते हैं। इसे पैठिक लावा शंकु कहते हैं, क्योंकि इसकी रचना बेसाल्ट लावा द्वारा होती है। हवाई द्वीप में मोना लोआ ज्वालामुखी का शंकु ऐसा ही है।

(ङ) एसिड लावा शंकु (Acid lava Cone) :→ जब उद्गार से निकला लावा काफी गाढ़ा और चिपचिपा होता है एवं सिलिका की मात्रा अधिक है तो लावा ज्योंहि धरातल पर प्रकट होता है उसी समय शीघ्रता से ठंडा होकर जम जाता है। अतः उसको फैलने का समय नहीं मिल पाता, फलस्वरूप तीव्र ढाल वाले ऊँचे शंकु का निर्माण होता है।

(च) लावा गुम्बद (Lava Dome) :→ लावा गुम्बद प्रायः शील्ड शंकु का ही रूप होता है। इसका ढाल अधिक होता है। लावा गुम्बद का निर्माण ज्वालामुखी-छिद्र के चारों तरफ लावा के जमाव से होता है।

(छ) ज्वालामुखी ग्रीवा (Volcanic neck) :→ जब मिश्रित शंकु वाले ज्वालामुखी शान्त हो जाते हैं, तो उनकी नली तथा छिद्र ठोस लावा से भर जाते हैं। जब शंकु अपरदन द्वारा नष्ट हो जाता है तो नली में जमा प्लग या कॉग दिवार की तरह खड़ी दिखाई पड़ती है। इस प्रकार प्लग से पूरी नली भर जाती है, तो उसे ज्वालामुखी ग्रीवा कहते हैं। जैसे – U.S.A के न्यू मैक्सिको प्रान्त के माउन्ट टेलर जिले में पाये जाते हैं।

(ii) निचले भाग (Depressed forms) :→ विस्फोट के समय ज्वालामुखी का कुछ भाग उड़ जाता है और कुछ भाग नीचे धस जाता है। इस प्रकार के बने आकारों में क्रेटर तथा काल्डेरा कौन प्रमुख हैं, जिन्हें धसे हुए भाग कहते हैं।

(क) क्रेटर :→ ज्वालामुखी छिद्र के ऊपर स्थित गर्त को क्रेटर या ज्वालामुखी मुख कहते हैं। इनका ढाल उस शंकु पर आधारित होता है, जिनके ऊपर उनका निर्माण होता है। जब किसी ज्वालामुखी के प्रवाह विस्तार हो जाता है तथा पुनः जब ज्वालामुखी का उद्गार छोटे पैमाने पर होता है तो क्रेटर के अन्दर छोटे शंकुओं पर कई क्रेटर बन जाते हैं पर इस प्रकार एक विस्तृत क्रेटर के अन्दर कई छोटे-2 क्रेटर पाये जाते हैं। इस प्रकार के आकृति को घोंसलाकार क्रेटर (Nested crater) या सामुद्रिक क्रेटर कहते हैं। जैसे — फिलीपाइन्स द्वीप में माउन्ट ताल ज्वालामुखी

(ख) काल्डेरा :→ काल्डेरा एक स्पेनिश भाषा का एक शब्द है जिसका अर्थ कड़ाहा से होता है अतः ज्वालामुखी शंकु शीर्ष पर एक विस्तृत कड़ाहे नुमा गोलाकार गड्ढे को ही काल्डेरा कहते हैं। काल्डेरा शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में मतभेद है। कुछ लेखकों के अनुसार खड़ी रूप से दीवारों से आबद्ध एक विस्तृत ज्वालामुखी क्रेटर को ही काल्डेरा कहा जाता है। डेली के अनुसार काल्डेरा से आशय उस विशाल ज्वालामुखी क्रेटर से लिया जाना चाहिए जो विस्फोट के कारण बना है। कनारी द्वीप का लार काल्डेरा विश्व प्रसिद्ध है। क्रेटर लेक ओरेगोन राज्य की क्रेटर झील का काल्डेरा विश्व प्रसिद्ध है।

B/ दरारी उद्गार द्वारा निर्मित स्थल स्वरूप :→ इस प्रकार के ज्वालामुखी का उद्गार एक मुख से न होकर भू-पटल में पड़ी दरारों से होता है। इन दरारों से लावा उबलकर धीरे धीरे शान्तिपूर्वक बाहर आकर सतह पर फैल जाता है। इस प्रकार के उद्गार से लावा मैदान, लावा पठार आदि का निर्माण होता है। U.S.A. में कोलम्बिया, भारत में दक्कन लावा पठार में उदाहरण है। आइसलैंड में सन् 1838 में 17 मील लम्बी दरार बन गयी थी जिससे लावा निकला था। इस उद्गार में द्वीप की आबादी का पाँचवाँ भाग समाप्त हो गया।

2/ आभ्यन्तरिक स्थलाकृति (Intrusive Topography)

जब ज्वालामुखी के उद्गार के समय गैस एवं वाष्प की तीव्रता में कमी होती है तो लावा धरातल के ऊपर न आकर धरातल के नीचे ही दरारों आदि में रुककर जमकर कठोर रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार धरातल के नीचे बने स्थल स्वरूप को आन्तरिक अथवा आभ्यान्तरिक स्थल स्वरूप कहते हैं।

जैसे → (क) बैथोलिथ (Batholith) :→ बैथोलिथ लम्बे, असमान तथा उभरे हुए आग्नेय शैल के आकार के होते हैं। ये प्रायः गुम्बद के आकार के होते हैं, जिनके किनारे काफी ढाल होते हैं तथा आधार तल अधिक गहराई में होता है। अपरदन द्वारा इसका ऊपरी भाग दिखाई देता है, परन्तु इसका आधार कभी नहीं देखा जा सकता। इसका ऊपरी भाग अत्यधिक असमान तथा ऊबड़ खाबड़ होता है। यह अधिकतर वहीं पाये जाते हैं जहाँ ज्वालामुखी का उद्गार होता है इनकी रचना में ग्रेनाइट का योग रहता है।

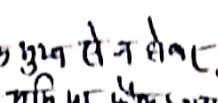

(ख) लैकोलिथ (Lacolith) :→ लैकोलिथ लावा-निर्मित एक वृहद आकार होता है, जिसका रूप उत्तल ढाल के रूप में होता है। लैकोलिथ खासकर परतदार चट्टानों के बीच पाये जाते हैं। जब लावा का उद्गार होता तो गैस के जोर से परतदार शैल की ऊपरी परत गुम्बदाकार रूप में बदल जाती है। फलस्वरूप ऊपर वाली मुड़ी हुई तथा निचली सीधी परत के बीच खाली जगह बन जाती है जिसे ज्वालामुखी शंकु आदि भर जाते हैं, जिस कारण लैकोलिथ का निर्माण होता है। लैकोलिथ केवल परतदार चट्टानों में ही बनता है। इसका ऊपरी भाग गुम्बदनुमा होता है, जिसके किनारे झुके हुए होते हैं। जैसे- U.S.A. के पश्चिमी भाग में ऐसे अनेक आकार देखने को मिलते हैं।

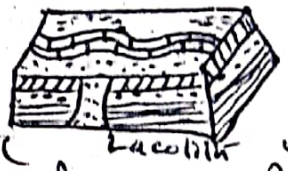

(ग) लोपोलिथ (Lopolith) :→ लोपोलिथ ग्रीक भाषा के लोपास (Lopas) से लिया गया है, जिसका तात्पर्य होता है, एक छिछली बेसिन। जब लावा का जमाव धरातल के नीचे अवतल आकार वाली छिछली बेसिन में होता है तो तश्तरी नुमा आकार का निर्माण होता है इस आकार को लोपोलिथ कहते हैं जैसे :- ट्रान्सवाल का 480 K.m लम्बा लोपोलिथ

(घ) फैकोलिथ (Phacolith) :→ ज्वालामुखी उद्गार के समय मोड़दार पर्वत की अपनति (Anticline) तथा अभिनति (Syncline) में लावा का जमाव हो जाता है। इस प्रकार के बने आग्नेय शैल को फैकोलिथ कहते हैं।

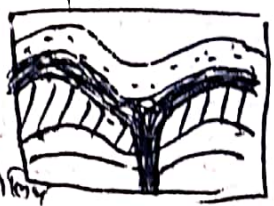

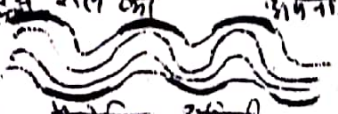

(ङ) गेसर (Geyser) :→ गेसर वास्तव में एक प्रकार का गर्म जल स्रोत होता है। जिससे समय समय पर गर्म जल या वाष्प निकला करती है। गेसर शब्द आइसलैंड की भाषा के गेसिर शब्द (Geysir) से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ "तेज से उछलता हुआ (Gusher) अथवा "फुहारा छोड़ने वाला (Spouter) होता है। बहुत से ज्वालामुखी क्षेत्र में उद्गार के बाद दरारों तथा सुराखों से होकर कुछ अवकाश के बाद गर्म जल कुछ या अधिक ऊँचाई तक निकलने लगता है, ज्वालामुखी के क्रिया के इस गौण रूप को ही गेसर कहते हैं।

(च) सिल (Sill) :— सिल परत के रूप में आग्नेय शैल का समूह होता है जब लावा का प्रवाह होता है तो लावा का जमाव परतदार अथवा रूपान्तरित शैलों की परतों के बीच हो जाता है। जब इस जमाव की मोटाई अधिक होती है तो सिल कहते हैं। इसकी मोटाई कुछ C.m से लेकर कई मीटर तक होती है।

(छ) शीट (Sheet) :→ जब सील का जमाव मोटी न होकर पतली होती है, जिसे शीट कहते हैं। इसकी मोटाई कुछ C.m से लेकर कई मीटर तक होती है।

(ज) डाइक (Dyke) :— यह भी प्रायः सील की तरह ही होती है, परन्तु यह अपेक्षाकृत लम्बी तथा पतली होती है। मोटाई में डाइक कुछ C.m से सैकड़ो मीटर तक पायी जाती है। यह [illegible] और बड़ी दोनों प्रकार की होती है।

Scanned with CamScanner

प्रथम पत्र

Unit : IV

वायुमंडल का संगठन एवं संरचना

(6) 780 (A)

Structure of the Atmospher

हवा को हम देख नहीं सकते न छू सकते और न ही चख कर स्वाद ले सकते हैं। इसका न तो रंग दिखता है और न ही रूप, फिर भी इसका बिल्कुल स्पष्ट रूप से अनुभव हम बराबर किया करते हैं। यह तो सच है कि यह प्रकृति की एक अनुपम देन है। और सब जगह प्रचुर मात्रा में मौजूद है। हवा की काफी मोटी तह हमारी सम्पूर्ण पृथ्वी के ऊपर सर्वत्र फैली हुई है। हवा की इसी मोटी तह को वायुमण्डल (Atmosphere) कहते हैं।

वायु को प्रभावित करने वाले तत्वों में ऊँचाई और अक्षांश बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। पतंग व गुब्बारों, वायुयान, और पहाड़ों पर किये गये सर्वेक्षण से पता चलता है कि सबसे घनी वायु पृथ्वी से सटे भाग में ही मिलती है, क्योंकि इसी भाग में वाष्प कण और धूल धूल कण रहने के कारण वायु गर्म रहती है। हम पृथ्वी से जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं तापमान में कमी मिलती है जिसे Laps Rate कहते हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि 165 मी० की ऊँचाई पर जाने पर 1°F ताप में कमी पाई जाती है।

गत 150 वर्षों में वायुमण्डल सम्बंधी ज्ञान में अपेक्ष उन्नति हुई है। अनेक वैज्ञानिकों ने आधुनिक अविष्कारों का लाभ उठाकर वायुमण्डल की महत्वपूर्ण यात्रा की है इनमे लैफ्टीनेट एडम, कैप्टिन स्टीवन्सन, कैप्टिन एण्डरसन, मेजर कूलाइनी, मेजर केन्सकी, डा० पिकार्ड, एवं अमेरिकी यात्री जूपर, कारपेन्टर, रूसी अन्तरिक्ष यात्री यूरी गगारीन, पोपोविच, मेजर तितोव व लियोनोव आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

Elements of Atmosphers

सम्पूर्ण वायुमण्डल हवा से परिपूर्ण है, मगर सवाल यह है कि यह हवा आखिर है क्या चीज ? और इसकी रचना कैसे हुई ? यह हम जानते हैं कि हवा एक गैसीय पदार्थ है और विभिन्न 2 गैसों के सम्मिश्रण से बनी है। सूखी हवा में 10 गैसें होती हैं जिनमें भारी गैसे वायुमंडल की निचली परतों में तथा हल्की गैस ऊपरी परतों में प्रधानता है, किन्तु लगभग 100 K.m. तक की हवा में नाइट्रोजन और आक्सीजन की प्रधानता है। वायुमण्डल में गैसों की मात्रा निम्न प्रकार से है —

गैस का नाम	आयतन (% में)
नाइट्रोजन	78.06
आक्सीजन	19.9
आर्गन	0.97
कार्बन डाई आक्साइड	0.29
हाइड्रोजन	0.0033
नियोन	0.0015
हीलियम	0.0001
जीनन	0.00005
ओजोन	अंश मात्र

ये सभी मिलकर वायुमंडल की रचना करती हैं इन तत्वों में आक्सीजन महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी पर जीव निर्भर है।

वायुमण्डल की परतें

कई वर्षों तक मानव को वायुमण्डल का कोई स्पष्ट ज्ञान नहीं था वह अन्तरिक्ष की घटनाओं को दैविक घटना समझता था। कई वर्षों तक यह विषय अछूत रहा। लगभग पिछले 150 वर्षों से अन्तरिक्ष विज्ञान का विकास दिनों दिन बढ़ता रहा और इसके मुख्य वैज्ञानिकों में कैप्टेन स्टीनेस, डा० पीकार्ड, एवं मेजर फ्लोइनी इत्यादि मुख्य हैं। वर्तमान समय में वायु को माप ने वाले यंत्रों का विकास हो गया है जैसे — स्पूतनिक, रडार, राकेट यान आदि की सहायता से वायु मंडल के विभिन्न परतों का पता चला है इनके आधार पर वायु मंडल की ऊँचाई 16 से 29 हजार K.m. तक बताई जाती है, लेकिन धरातल से 800 K.m. ऊपर वायु मंडल ही अधिक महत्वपूर्ण है। अतः वायुमंडल को निम्नलिखित परतों में बाटा गया है।

(i) अधो मंडल (Troposhere)
(ii) सम मंडल (Stratosphere)
(iii) आयन मंडल (Ozone sphere)
(iv) आयतन मंडल (Exosphere)

(i) — <u>अधोमंडल</u> :→ वायुमंडल की यह परत सबसे निचली परत है। इसकी औसत ऊँचाई 12 K.m. बताई गयी है। यह भूमध्य रेखा पर 16 K.m, मध्य अक्षांशों पर 12 K.m. और ध्रुव पर $6\frac{1}{2}$ K.m है। इस भाग में वाष्प कण, धूलकण, आंधी, तूफान, गर्जन, बिजली, वर्षा मिलती रहती है। इस भाग में गर्मी और सर्दी का हेर फेर होता रहता है। इस लिये इसे परिवर्तन मंडल भी कहा जाता है। वायुमंडल के इस भाग में ऊँचाई के अनुसार तापमान घटता जाता है। 1 K.m की ऊँचाई पर 10°c तापमान कम होता है इस भाग में संवाहनिक पवनें (Convectional winds) चला करती हैं। इस लिये इस प्रदेश को संवाहन कटिबंध भी कहते हैं। वायुमंडल की भारी गैस इसी भाग में मिलती हैं। वायुमंडल की इस भाग में वायु कभी शान्त नहीं रहती।

Scanned with CamScanner

(2) **समभंडल :→** यह वायुमंडल की परत, अधोमंडल से ऊपरी परत है। इसकी ऊंचाई 50 से 80 K.m. बतायी गयी है। अप्रैल 1858 में तिसरा डी बोर्ड ने इस बात का पता लगाया कि इस भाग में विकिरण द्वारा प्राप्त गर्मी प्रस्तुत विकिरण के समान होता है। इस प्रकार इस कटिबंध में तापमान के अपरिवर्तित रहने के कारण ही इसे समतापमंडल (Isothermal zone) कहा जाता है। सम ताप मंडल की ऊंचाई अक्षांशों तथा ऋतुओं के अनुसार बदलती रहती है। ध्रुव की अपेक्षा विषुवत रेखा पर इसकी ऊंचाई अधिक होती है। इस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में इसकी ऊंचाई जाड़े की अपेक्षा अधिक होती है। इस मंडल में बादल, गर्जन, ओला आदि का अभाव होता है। इस भाग में तापमान घटता बढ़ता बहुत ही कम है। क्योंकि इस भाग में संवाहनिक धाराएं बहती है जो ताप को घटने बढ़ने नहीं देती। इस भाग में जलवाष्प और धूलकण बहुत ही कम होता है।

(3) — **ओजोन मंडल :→** यह मंडल समताप मंडल के ऊपरी मंडल है। इसकी ऊंचाई 40 K.m से 80 K.m. पाई जाती है। इस मंडल में ओजोन गैस की अधिकता पायी जाती है। इसी लिए इसे ओजोन मंडल कहते हैं। इस भाग में ओजोन गैस सूर्य की पराबैंगनी किरणों को सोख लेती है, जिससे सूर्य की ज्यादा गर्मी निचे नहीं आ पाती। यह मंडल नहीं रहता तो सूर्य की पराबैंगनी किरणें तत्क्षण रूप से निचे आती, जिससे ताप बहुत बढ़ जाता और लोगों का जीवित रहना कठिन हो जाता। इसी परत से पृथ्वी के ऊपर जाने वाली आवाज की लहरे टकराकर वापस लौट आती है।

(4) — **आयन मंडल :→** यह मंडल ओजोन मंडल से ऊपरी परत है। इस मंडल की खोज 1902 में अमेरिका के केनिली और इंगलैंड के हीवीसाइड वैज्ञानिकों ने की थी वायुमंडल के यह भाग 80 से 640 K.m तक विस्तृत है। इस मंडल के तीन उपमंडल हैं। — सबसे निचे D तह — 60 से 96 K.m. ऊपर

इससे ऊपर E तह — 96 — 144 K.m.

ऊपर F तह — 144 — 360 K.m.

वायुमंडल के इस परत में रेडियो तरंगें पायी जाती है, जिसे बेतार की तार अधिक दूर तक ले जाई जाती है। इसमें विद्युत चालकता तीव्र होती है। रेडियो तरंगें भूतल पर न आकर आकाश में चलती जाती है।

(5) — **आयतन मंडल :→** यह वायुमंडल, वायुमण्डल की सबसे ऊपरी परत है। इस मण्डल की खोज लेमैन स्पीजर ने की थी इस वायुमंडल की मोटाई 640 K.m से 1000 K.m. तक मानी गयी है। इसमें ऊंचाई के साथ ताप बढ़ता है। इसमें वायु बहुत ही विरल होती है अधिक ऊपर जाने पर ताप नाम मात्र भी नहीं रह जाती है।

वायुमंडल की रासायनिक संरचना

रासायनिक संरचना की दृष्टि से वायुमंडल को दो भागों में विभक्त किया गया है —

(1) — **समभंडल :→** (Homosphere) :→ यह वायुमंडल की सबसे निचली परत है। इस वायुमंडल की ऊंचाई समुद्र तल से 90 K.m. तक मानी गयी है। इस वायुमंडल की रचना आक्सीजन - 20.946%, नाइट्रोजन - 78.084% तथा शेष 1% भाग में कार्बनडाई आक्साइड, आर्गन, निओन, हिलियम, क्रिप्टान, जेनोन व हाइड्रोजन आदि गैस सम्मिलित हैं। इस मंडल को तीन उपविभागों में बांटा गया है क्षोभ मंडल (Troposphere), स्तैत मंडल (Stratosphere), मध्यस्त मंडल (Mesosphere),

(2) **विषम मंडल :→** यह समभंडल के ऊपर है। इस मंडल की ऊंचाई 90 से 10,000 K.m तक मानी गयी है। इस भाग में रासायनिक और भौतिक गुण में विषमता पाई जाती है। इस लिए इस मंडल को विषम मंडल कहते हैं। इसमें ऊंचाई के साथ तापक्रम में ~~एक~~ वृद्धि होती जाती है। इसके अधिकतम तापक्रम 10,000 F° बढ़ जाती है।

वायुमण्डल का महत्त्व

जिस प्रकार मानव जीवन के लिए भोजन, वस्त्र आवश्यक है, उसी प्रकार वायु अति आवश्यक है। भोजन के बिना मनुष्य कुछ दिन जिन्दा रह सकता है, धन के बिना एवं वस्त्र के बिना कई आदिवासी जीवन व्यतीत कर लेते हैं, परन्तु वायु के कुछ मिनट न मिलने पर ही मनुष्य का दम घुटने लगता है। वायु के बीना जीवन की कल्पना एक स्वप्न है। जीवों और वनस्पतियों के लिए भी वायु उसी प्रकार आवश्यक है जैसे मनुष्य के लिए।

Scanned with CamScanner

Unit-IV

थार्नवेट तथा कोपन का जलवायु वर्गीकरण

(14) Classification of Climate (A)

किसी भी स्थान और समय की वायु दशा मुख्यतः वहाँ के तापमान, वायु दाब, आर्द्रता, वर्षा व हवाओं द्वारा प्रकट की जाती है। ये सब जलवायु और मौसम के तत्व (Elements) कहलाते हैं क्योंकि इनके आधार पर ही विभिन्न प्रकार के मौसम और जलवायु बनती है।

जलवायु के प्रकृति निरंतर बदलती हुई मौसम की अवस्थाओं का मिश्रण होता है। कई सप्ताह, महीने और वर्ष भर की मौसम की अलग-2 अवस्थाओं को जोड़कर औसत निकालने और औसत को जोड़कर औसत निकालने और औसत को कई वर्षों के औसत से जोड़ने पर स्थायी जलवायु ज्ञात होती है। प्रायः किसी स्थान की जलवायु को समुचित रूप से जानने के लिए न्यूनतम 30 वर्षों की अवधि आवश्यक मानी गयी है। जलवायु एक विस्तृत क्षेत्र में काफी लम्बे समय की वायु मंडल की अवस्थाओं का विवरण होता है, अर्थात वायु मंडल की स्थायी/औसत अवस्थाओं का नाम ही जलवायु है।

मोंकहाउस के अनुसार:— "Climate really Comprise a description of the Condition of the weather over a considerable over for a long time."

केण्ड्रू के अनुसार:— "जलवायु का कोई भी चित्र तब तक सही नहीं हो सकता जब तक कि वह नित्य-प्रति बदलने वाले मौसम और ऋतु परिवर्तन के उन तमाम रंगों नहीं बताया जाता जो उसके प्रमुख लक्षण हैं।"

अतः जलवायु को निर्धारित करने वाले निम्नलिखित तत्व हैं — (i) अक्षांश (latitude) (ii) समुद्रतल से ऊँचाई (Altitude) (iii) पर्वतों की दिशा (Direction of Mountain Ranges) (iv) समुद्र से दूरी (Distance from the sea) (v) धाराएं (Ocean Currents) (vi) पवनों की दिशा (Direction of winds) (vii) वायु विक्षोभ (Air Disturbances)

Thorantwaites Classification of Climate

थार्नवेट अमेरिका के एक ऋतु विशेषज्ञ थे उन्होंने ने उत्तरी अमेरिका के कई स्थानों का सर्वेक्षण करने के उपरान्त 1931 में जलवायु का एक नवीन वर्गीकरण प्रस्तुत किया। कोपन की तरह थार्नवेट ने वनस्पति को ध्यान में रखकर किया। वनस्पति की उत्पत्ति केवल वर्षा पर निर्भर न होकर वाष्पीकरण की न्यूनाधिकता पर निर्भर करती है। अतः थार्नवेट ने जलवायु के वर्गीकरण में अन्य तत्वों के साथ वाष्पीकरण की मात्रा को विशेष महत्व प्रदान की है। उन्होंने जलवायु के विभाजन निम्न आधार पर किया — (i) वर्षण प्रभाविता (Precipitation Effectiveness) (ii) तापीय दक्षता (Temperature Efficiency) (iii) मौसमी वर्षा का वितरण (Seasonal Distribution of Precipitation)।

1/ वर्षा प्रभाविता के आधार पर:— वर्षा प्रभाविता का तात्पर्य सम्पूर्ण वार्षिक वर्षा के केवल उस भाग से है जो वनस्पति की उत्पत्ति तथा विकास को प्रभावित करती है। सम्पूर्ण औसत मासिक वर्षा को यदि कुल मासिक वाष्पीकरण से विभाजित कर दिया जाय तो वर्षा प्रभाविता का अनुपात ज्ञात हो जाएगा। इसे ज्ञात करने का सूत्र यह है—

$$P.E.\ Radio = \frac{P}{E} = 115\left(\frac{P}{T-10}\right)^{\frac{10}{15}}$$

जिसमें P = मासिक वर्षा (इन्चों में), E = मासिक वाष्पीकरण, T = तापमान (फा० में),

तापीय क्षमता को ज्ञात करने के लिए औसत मासिक तापमान को मासिक वाष्पीकरण को प्रभावित किया जाता है।

वर्षा प्रभाविता के आधार पर भेद

थार्नवेट ने संरक्षात्मक मात्राओं के प्रभाव के आधार पर जलवायु प्रदेशों को बाटा है और जलवायु प्रदेशों को विभिन्न अक्षरों से व्यक्त किया है। उसने जलवायु के प्रमुख रूप से 5 विभाग किये हैं। इसके प्रथम 5 भाग ही अधिक मान्य हैं क्योंकि इनमें तापीय क्षमता अधिक होती है। शेष तीन भागों में तापमान की क्षमता कम रहती है।

भेद	आर्द्रता का प्रकार	वनस्पति	वर्षण क्षमता (P.E. Radio)
A	तर (wet)	वर्षा वन (Rainforest)	128" या अधिक
B	आर्द्र (Humid)	वन (forest)	64" से 127"
C	अर्धआर्द्र (Sub humid)	घास के मैदान (Grass Land)	32" से 63"
D	अर्द्ध शुष्क (Semi-arid)	स्टेपी (Steppe)	16" से 31"
E	शुष्क (Arid)	मरुस्थल (Desert)	16" से कम

इन पाँच आर्द्रतापूर्ण प्रान्तों को पुनः मौसमी परिवर्तन के आधार पर 5 उपविभागों में बाटा गया है। थार्नवेट ने इन उपविभागों को छोटे अक्षरों से व्यक्त किया है।

1. r = वर्ष भर प्रचुर वर्षा, 2. s = ग्रीष्म ऋतु में कम वर्षा, 3. w = शीत ऋतु में कम वर्षा, 4. w' = बसन्त ऋतु में कम वर्षा
5. d = वर्ष भर में कम वर्षा।

Scanned with CamScanner

2/ **तापीय उष्मता के आधार :-** वनस्पति की उत्पत्ति तथा विकास में तापक्रम का भी महत्वपूर्ण योगदान है। अतः तापक्रम के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए थार्नवेट महोदय ने तापक्रम की उष्मता अर्थात तापीय क्षमता (~~Thermal~~ Thermal effeciency) TE अनुपात तथा T-E तापीय उर्जता का प्रयोग किया है। PE उर्जता के समान 12 माह के TE अनुपातों का योग TE अनुपात होता है। ध्रुवों के समीप तापक्रम का प्रभाव कम तथा भूमध्यरेखा की तरफ अधिक रहता है जहां पर यह 128 तथा ध्रुवों पर शून्य आंकी गयी।

सूत्र — TE ration और TE index के निम्न दिये हैं।

$$TE\ ratio = \frac{T-3}{4}$$

$$TE\ index = \sum_{n-1}^{12} \left(\frac{T-3^2}{4}\right)$$

थार्नवेट ने TE उर्जता के ~~अनुपात~~ आधार पर पृथ्वी को 6 तापीय प्रदेशों में विभक्त किया है।

कोड	तापीय प्रान्त	TE Index
A	उष्ण कटिबंधीय	128" या अधिक
B	मध्यम तापीय	64" से 127"
C	अल्प तापीय	32" से 63"
D	टैगा	16" से 31"
E	टुण्ड्रा	1" से 15"
F	हिमाच्छादित (frost)	0

3/ **मौसमी वर्षा का वितरण आधार :-** वर्षा के मौसमी वितरण तथा तापीय उष्मता को देखा जाय तो कुल 120 उप प्रकार या वर्ग बन सकते हैं, परन्तु धरातल पर थार्नवेट ने इसमें से केवल 32 जलवायु प्रकार ही स्वीकार किये हैं।

1	AA'r	उष्ण कटिबंधीय तर जलवायु	सभी ऋतुओं में प्रयाप्त वर्षा
2	AB'r	मध्य तापीय तर "	" " " " "
3	AC'r	शुष्क " " "	" " " " "
4	BA'r	उष्ण कटिबंधीय आर्द्र जलवायु	सभी मौसम में वर्षा
5	BA'w	" " " "	शीत काल " "
6	BB'r	मध्य तापीय " "	सभी मौसम " "
7	BB'w	" " " "	शीत काल " कम वर्षा
8	BB's	" " " "	उष्ण " " " "
9	BC'r	शुष्क " "	सभी मौसम में वर्षा
10	BC's	" " " "	उष्ण काल में कम वर्षा
11	CA'r	उष्ण कटिबंधीय उपार्द्र जलवायु	सभी मौसम में वर्षा
12	CA'w	" " " "	शीत काल में कम वर्षा
13	CA'd	" " " "	सभी मौसम में कम वर्षा
14	CB'r	मध्य तापीय " आर्द्र जलवायु	सभी मौसम में वर्षा
15	CB'w	" " " "	शीत काल में वर्षा
16	CB's	" " उपार्द्र "	उष्ण काल में कम वर्षा
17	CB'd	" " " "	सभी मौसम में कम वर्षा
18	CC'r	शुष्क तापीय उपार्द्र जलवायु	सभी मौसम में वर्षा
19	CC's	" " " "	उष्ण काल में कम वर्षा
20	CC'd	" " " "	सभी मौसम में कम वर्षा
21	DA'w	उष्ण कटिबंधीय अर्द्ध शुष्क जलवायु	शीत काल में कम वर्षा
22	DA'd	" " " " "	सभी मौसम में कम वर्षा
23	DB'w	मध्य तापीय " " "	शीत काल में वर्षा
24	DB's	" " " " "	उष्ण काल में कम वर्षा
25	DB'd	" " " " "	सभी मौसम में कम वर्षा
26	DC'd	शुष्क तापीय " " "	" " " " "
27	EA'd	उष्ण कटिबंधीय जलवायु	" " " " "
28	EB'd	मध्य तापीय शुष्क "	" " " " "
29	EC'd	शुष्क " " "	" " " " "
30	D'	टैगा तुल्य जलवायु	
31	E'	टुण्ड्रा तुल्य "	
32	F'	सतत हिमाच्छादित जलवायु ध्रुवीय जलवायु	

Scanned with CamScanner

प्रथम पत्र

Unit - IV

थार्नवेट तथा कोपेन का जलवायु वर्गीकरण

Koppen's Classification of Climate

उत्तर - जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान डा० ब्लादीमीर कोपेन ने 1918 में अपने वर्गीकरण को प्रस्तुत किया था। इसके बाद उन्होंने कई बार उसमें परिमार्जन तथा संशोधन किये और अन्ततः 1936 में अपना विचार वर्गीकरण प्रस्तुत किया जिसमें तापक्रम और वर्षा को प्रमुख आधार बनाया गया है। इसके विभाजन में पर्वतीय भागों की अपेक्षा मैदानी भागों का अधिक ध्यान रखा गया है और जलवायु की सीमाओं के निर्धारण में सबसे अधिक गरम और सबसे अधिक ठण्डे महीनों के तापमान को आधार माना गया है। अतः कोपेन ने तापक्रम एवं वर्षा को वनस्पति का सूचक मानते हुए निम्नलिखित पाँच वनस्पति वर्गों को आधार माना जो इस प्रकार है—

(1) मेगाथर्म (Megatherms) :→ ये वनस्पति मुख्यतः उच्चतापक्रम एवं अधिक आर्द्रता के क्षेत्र में उत्पन्न होती है। इसमें सबसे शीत माह का तापक्रम 18° cg से ऊपर होना चाहिए। जाड़े एवं बसन्त ऋतु में इसमें शुष्क मौसम होना आवश्यक है।

(2) जीरोफाइट (Xerophytes) :→ इन पौधों के लिए शुष्क जलवायु एवं उच्च तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है। ये पौधे विभिन्न जलवायु में अनेक स्वरूपों में हो जाते हैं। मरुस्थलीय वनस्पति इसकी द्योतक है।

(3) मेसोथर्म (Mesotherms) :→ इस प्रकार की वनस्पति को साधारण ताप तथा औसत आर्द्रता की आवश्यकता पड़ती है। जिन भागों में यह वनस्पति होती है वहाँ पर जाड़े का तापक्रम 180° F तथा गर्म माह का तापक्रम 20° cg तक आंका गया है।

(4) माइक्रोथर्म (Microtherms) :→ इन पौधों के क्षेत्रों में गर्म माह का औसत तापक्रम 10° cg तथा अधिक से अधिक तापक्रम 20° cg एवं सबसे शीतऋतु का तापक्रम 48° से नीचे नहीं उतरने नहीं पाता है। इस क्षेत्र में जहाँ यह वनस्पति होती है वहाँ पर जाड़ों में वर्फ एवं गर्मियों में प्रचुर वर्षा भी होती है।

(5) हेकिस्टोथर्म (Hekistotherms) :— यह वनस्पति मुख्यतः शीत प्रदेशों में उगती है। यहाँ पर साल के अधिकांश समय तक वर्फ गिरती रहती है तथा इन पौधों को उगने के लिए कम से कम तापक्रम की आवश्यकता होती है।

कोपेन ने पाँच जलवायु के कटिबन्ध तथा उनके 11 उपविभाग दिखाए गये हैं। जिनका निम्न प्रकार इसका वर्णन कर रहे हैं।

(1) **A जलवायु** :→ कोपेन के अनुसार A जलवायु सदैव गर्म एवं आर्द्र रहती है शीत मास का तापक्रम 18° cg से अधिक रहता है।

Af — इसमें किसी भी मास का तापक्रम 18° cg से कम नहीं रहता है। अमेजन नदी की बेसिन इस जलवायु का उदाहरण है।

Aw — इसमें सवाना की जलवायु सम्मिलित कर सकते हैं सभी माह गर्म तथा तापान्तर अधिक रहता है।

Am — इसमें मानसूनी जलवायु को सम्मिलित किया जा सकता है।

(2) **B जलवायु** :→ इसमें औसत वर्षा वाष्पीकरण अपेक्षा कम रहती है। इसमें वर्षा न्यूनतम होती है। इसको दो वर्गों में बाटा गया है— (i) मरुस्थलीय (Bw) तथा (ii) स्टेपी (Bs) इस दो प्रकार की जलवायु को पुनः दो वर्गों में विभाजित करते हैं।

Bwh — निम्न अक्षांशीय गर्म मरुस्थल जिसमें शुष्क मौसम एवं वार्षिक तापान्तर अधिक रहते हैं।

Bwk — शुष्क जलवायु वाले प्रदेश में शीतऋतु अत्यधिक ठण्डी एवं गर्म ऋतु अधिक गर्म, वार्षिक तापान्तर अधिक, वर्षा की मात्रा अनिश्चित होती है।

BSh — मध्य अक्षांशीय मरुस्थल में अल्पकालिक वर्षा ऋतु, गर्म अत्यधिक, शुष्क गर्म स्टेपी क्षेत्र आते हैं।

BSk — मध्य अक्षांशीय ठण्डे स्टेपी क्षेत्र में, तापक्रम का वार्षिक अन्तर अधिक वर्षा का कुछ भाग हिम वृष्टि के रूप में होता है।

(3) **C जलवायु** — यह जलवायु मुख्यतः महाद्वीपों के पूर्वी तथा पश्चिमी भाग में मिलती है। इस जलवायु को वर्षा के अनुसार निम्नलिखित भागों में बाटा गया है—

Cfa — ग्रीष्म ऋतु अधिक गर्म तथा शीत ऋतु ठण्डी, जिसमें शुष्क मास की वर्षा 2 c.m तथा गर्म मास का तापक्रम 21° cg रहता है।

Cfb — इसके प्रत्येक मास आर्द्र, ग्रीष्म ऋतु गर्म एवं शीत ऋतु ठंडी होती है। इसमें 21° cg से तापक्रम आगे नहीं बढ़ता।

Cfc — इसमें अल्पकालीन ग्रीष्म ऋतु तथा शीत ऋतु ठण्डी, तापान्तर अत्यधिक कम होता है।

Csa — ग्रीष्मऋतु अत्यधिक गर्म और शीत ऋतु अत्यधिक ठण्डी तथा आर्द्र शुष्क एवं आर्द्र मास की वर्षा का अन्तर तीन गुणा होता है।

Csb — शीत ऋतु ठंडी एवं आर्द्र, ग्रीष्म ऋतु कम गर्म एवं शुष्क, सबसे गर्म माह का तापक्रम 21° cg से कम होता है। मौसमी जलवायु के अन्तर्गत यह सबसे गर्म जलवायु है। ग्रीष्म ऋतु सबसे अधिक गर्म एवं आर्द्र शीत ऋतु शुष्क एवं ठण्डी होती है।

Cwb — औसत वर्षा की मात्रा अपेक्षाकृत औसत, वार्षिक तापक्रम 12° cg तक लगभग ग्रीष्म ऋतु एवं शीतऋतु ठंडी होती है।

(4) **D जलवायु** :— इस जलवायु के अन्तर्गत कई दिनों तक हिम का आवरण छाया रहता है। वर्षा का अधिकांश भाग हिम के रूप में होता है। इसको आठ (8) वर्गों में विभाजित करते हैं।

Dfa — इसमें ग्रीष्म ऋतु लम्बी तथा शीत ऋतु ठण्डी हिम वर्षा की मात्रा कम, तथा वार्षिक तापान्तर अधिक रहता है।

Dfb — शीत ऋतु के महीनों का तापक्रम 0° cg तक शीत ऋतु ठण्डी एवं आर्द्र हिम वर्षा की मात्रा अधिक तथा वर्षा विशेषकर हिम के रूप में होती है।

Dfc — ग्रीष्म ऋतु छोटी तथा शीत ऋतु लम्बी, औसत वार्षिक तापान्तर 6° से 10° cg तक वर्षा का अधिकांश भाग हिम के रूप में होता है।

Cfd — यह उपध्रुवीय जलवायु कहलाती है इसमें शीतऋतु लम्बी एवं कड़ाके का जाड़ा, ग्रीष्म ऋतु छोटी, वर्षा व वार्षिक अन्तर अधिक होता है।

Dwa — शीत कालिक मौसम ठंडा तथा काफी शुष्क, ग्रीष्म ऋतु गर्म एवं आर्द्र युक्त तथा वृष्टियुक्त, हिमपात न्यून होता है।

Cwb — ग्रीष्मकालिक वर्षा, शीत ऋतु ठण्डी तथा शुष्क, वार्षिक तापान्तर अधिक हिमपात कम

Dwc — शीत ऋतु में कड़ाके के जाड़े, ग्रीष्म ऋतु ठण्डी तथा छोटी होती है। वार्षिक तापान्तर अधिक होता है। शीत ऋतु में तापक्रम 0° cg से भी कम रहता है।

Scanned with CamScanner

Dwd — हिम वर्षा मुख्य रूप से होती है ग्रीष्म काल में काफी वर्षा तथा शीतकालीन मौसम में और भी अधिक वर्षा पड़ती है। लगभग 6 महीनों का तापक्रम शून्य से भी नीचे रहता है।

(5) E जलवायु :→ यह ध्रुवीय जलवायु कहलाती है। इसमें सबसे गर्म माह का तापक्रम 10°cg तक रहता है। इस जलवायु को दो वर्गों में बाँटा गया है।

ET — इसमें सबसे गर्म महीने का तापक्रम 10°cg से अधिक नहीं होता है तथा प्रत्येक महीना अपेक्षाकृत काफी ठण्डा होता है। वर्षा कम होती है। यदि होती भी है तो हिम के रूप में।

EF — यह क्षेत्र साल-भर बर्फ से ढका रहता है तथा औसत तापक्रम प्रति माह 0°cg से भी कम रहता है। वर्षा केवल हिम के रूप में होती है। बर्फ के ऊपर तुषारपात होने से बर्फ काफी समय तक धरातल को घेरे रहती है।

कोपेन द्वारा वर्णित जलवायु का जो वर्गीकरण किया गया है वह संकेतों के प्रयोग द्वारा अत्यधिक जटिल हो चुका है तथा प्रत्येक जलवायु विभागों की कोई निर्दिष्ट सीमा प्रतीत नहीं होती है।

कोपेन के वर्गीकरण की समीक्षा

पक्ष में मत

(i) संसार की जलवायु के वर्गीकरण के जितने तरीके अब तक खोजे गये हैं उनमें कोपेन का वर्गीकरण का तरीका श्रेष्ठ है।

(ii) कोपेन ने सर्वप्रथम जलवायु के वर्गीकरण में अपने अक्षरों का प्रयोग किया अन्य जिन लोगों ने अक्षरों का प्रयोग किया उन्होंने कोपेन का ही अनुसरण किया है।

(iii) कोपेन के वर्गीकरण में मुख्य भागों को ज्ञात करने के अलावा छोटे-2 तथा उपविभाग ज्ञात करने का बड़ा सरल तरीका दिया गया है।

(iv) अंग्रेजी के बड़े अक्षरों के साथ एक नया अक्षर और जोड़ देने पर जलवायु के वर्गीकरण में बड़ी सहायता मिलती है।

(v) कोपेन के वर्गीकरण के अनुसार वायुमंडलीय परिसंचरण की गति विधियाँ आदि बातें बिल्कुल नहीं बैठते हैं।

विपक्ष में मत

(i) कोपेन ने अपने वर्गीकरण में वर्षा की प्रभाव शीलता को बहुत अधिक महत्व दिया जिसकी थार्नवेट, ब्रुक्स, वार्ड, हेयर तथा क्रो आदि विद्वानों ने कड़ी आलोचना की है।

(ii) कोपेन के वर्गीकरण में पवन परिसंचरण, धरातलीय रचना समुद्री धाराओं आदि तत्व को कोई महत्व नहीं दिया गया जबकि ये आवश्यक और महत्वपूर्ण तत्व है।

(iii) कोपेन ने अपने वर्गीकरण में वनस्पति विशेषताओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जबकि जलवायु कृषि में एक महत्वपूर्ण तत्व है।

(iv) कोपेन ने अपने वर्गीकरण में पुगेट साउण्ड क्षेत्र के वनों को मुख्य सागरीय वनों के साथ सम्मिलित कर लिया जो वर्गीकरण सिद्धान्त के विपरीत है।

कोपेन के वर्गीकरण की उपरोक्त समीक्षा से स्पष्ट है कि अनेक कमियाँ होते हुये भी यह वर्गीकरण आज सर्वाधिक पुष्ट, सैद्धान्तिक एवं मान्य है।

थार्नवेट तथा कोपेन के जलवायु का वर्गीकरण की तुलना

कोपेन	थार्नवेट
(i) यह वर्गीकरण संख्यात्मक (quantitative) है।	(i) थार्नवेट का वर्गीकरण भी संख्यात्मक है।
(ii) कोपेन ने अपने वर्गीकरण में संकेत सहित छोटे तथा बड़े अक्षरों का प्रयोग किया है।	(ii) थार्नवेट ने भी अंग्रेजी के छोटे तथा बड़े अक्षरों का प्रयोग किया है।
(iii) कोपेन के वर्गीकरण में संकेत की अधिकता है अतः याद करने में कठिन है।	(iii) थार्नवेट के वर्गीकरण में संकेतों की कमी है और याद रखना सरल है।
(iv) कोपेन ने जलवायु की सीमाएँ ताप तथा वर्षा के निश्चित मानदण्डों के अनुसार मानी हैं। अतः वर्गीकरण की सीमाएँ सरल हैं।	(iv) थार्नवेट ने जलवायु की सीमाओं को P/E तथा T/E सूत्र के अनुसार माना है। अतः जलवायु सीमाएँ काफी जटिल हैं।
(v) कोपेन का वर्गीकरण पूर्णतः सैद्धान्तिक है।	(v) यह वर्गीकरण सैद्धान्तिक न होकर केवल जलवायु के तत्वों पर ही आधारित है।

Map

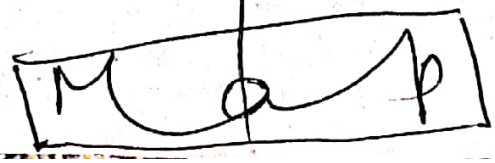

Scanned with CamScanner

प्रथम पत्र

Unit – V
आन्ध्र तथा हिन्द महासागर के नितल उच्चावच

Gulam Haider

(12) Relief of the Ocean floor (उच्चावच) (A)

पहले यह विश्वास किया जाता था कि समुद्र की तल एक समान समतल आकार की होती लेकिन बाद में खोजों से स्पष्ट हुआ कि इसकी रचना में ठीक उसी प्रकार की आकृति मिलती है जैसे धरातल पर कहीं ऊँची-नीची पर्वत मालाएँ हैं तो कहीं खाड़ियाँ एवं गर्त महासागरीय तली का रूप महाद्वीपीय किनारे से लेकर अत्यधिक गहराई तक भिन्न होता है। महासागरों की औसत गहराई 3800 मीटर तथा स्थल की औसत ऊँचाई 840 मीटर बताई जाती है। सागरीय नितल में चार प्रमुख उच्चावच आवतल गहराई तक ये मण्डल निम्न हैं —

(i) महाद्वीपीय मग्नतट (Continental Shelves) :→ महाद्वीपों का किनारे वाला वह भाग जो कि सागरीय जल में डूबा रहता है। महाद्वीपीय मग्न तट कहलाता है। इसका ढाल 1° से 3° के बीच तथा गहराई 100 फैदम (1 फैदम = 6) होता है।

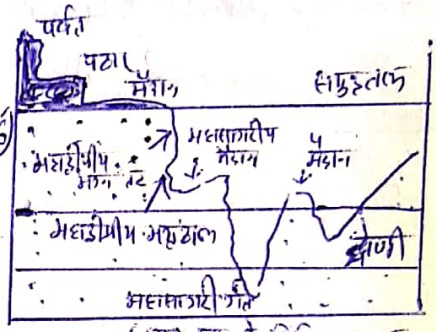

समुद्र तल के विभिन्न भाग

(ii) महाद्वीपीय मग्न ढाल (Continental Slope) :→ जल मग्न तट तथा गहरे सागरीय मैदान के बीच तीव्र ढाल वाले मण्डल को महाद्वीपीय मग्न ढाल कहा जाता है; जिसका ढाल भिन्न स्थानों पर भिन्न होता है औसत ढाल कोण 5° होता है मग्न ढाल पर जल की गहराई 200 से 2000 मीटर तक होती है।

(iii) गहरा सागरी मैदान (Deep Sea plains) :→ सागरीय मैदान महासागरीय नितल का सर्वाधिक विस्तृत मंडल होता है जिसकी गहराई 3000 से 6000 मीटर तक होती है। महासागरीय भाग के अन्तर्गत ये मैदान अत्यन्त विस्तृत होते हैं, जिनका ढाल अत्यन्त मंद होता है। परन्तु कहीं-कहीं पर लम्बे-लम्बे तथा पतले कटक (Ridges) पाये जाते हैं। ये कटक तीव्र ढाल वाले होते हैं।

(iv) सागरीय गर्त (Oceanic Deeps) :→ महासागरीय गर्त महासागरों के सबसे गहरे भाग होते हैं, जो महासागरीय नितल के लगभग 7% भाग पर फैला है। इनके ढाल खड़े होते हैं। इनकी स्थिति प्रायः तट के सहारे पर्वतीय मेखलाओं के सामने मिलती है। द्वीपों के सहारे भी यह गर्त देखने को मिलती है। महासागरों में कुल 57 गर्तों का पता लगाया गया है। 32 प्रशान्त, 19 अटलांटिक तथा 6 हिन्द महासागर में।

1) हिन्द महासागर का नितल — उच्चावच

सामान्य परिचय :→ हिन्द महासागर क्षेत्रफल में प्रशान्त महासागर तथा आन्ध्र महासागर से छोटा है, परन्तु यह चारों ओर से महाद्वीपों से घिरा है जैसे उ० में एशिया, द० पू० में आस्ट्रेलिया, पू० में एशिया, पं० में अफ्रीका द० में अंटार्कटिका। इसके अधिकांशतः प्राचीन पठारी भागों से सम्बंधित है।

मग्न तट :→ हिन्द महासागर के मग्न तटों में चौड़ाई की दृष्टि से प्रायः विविधता मिलती है। बंगाल की खाड़ी अरब सागर तथा अफ्रीका के पूर्वी भाग में चौड़े मग्न तट मिलते हैं। इस तरह मग्न तटों की चौड़ाई 640 K.m तक पायी जाती है। पूर्व में मग्न तट पतले हो जाते हैं और जावा तथा सुमात्रा तट के पास इनकी चौड़ाई 160 K.m है। अण्टार्कटिका महाद्वीप के सहारे मग्न तट और अधिक पतले हो जाते हैं।

मग्न ढाल :→ हिन्द महासागर के निकटवर्ती पठारी तट अधिकांशतः तीव्र ढाल वाले और बिन कटे-फटे हैं। अतः सागर के निकट तटीय समुद्र बहुत कम है।

हिन्द महासागर के द्वीप :→ हिन्द महासागर में अनेक द्वीप हैं। इसके बड़े व छोटे द्वीप महाद्वीपों के ही अंश हैं जैसे — मेडागास्कर, श्रीलंका, सोकोतरा, जंजीबार व कोमोरो सब इसी श्रेणी में आते हैं। बंगाल की खाड़ी में स्थित अण्डमान व निकोबार द्वीप श्रृंखला बर्मा के अराकानयोमा पर्वत श्रेणी के डूबे हुए भाग के अवशिष्ट चिन्ह हैं। हिन्द महासागर के पूर्वी भाग में द्वीपों का लगभग अभाव है। यहां निम्नलिखित द्रोणियां हैं।

(i) ओमान द्रोणी :→ ओमान की खाड़ी के सामने 12,000 फीट गहराई तक विस्तृत मग्नतट फैली है।
(ii) अरेबियन द्रोणी :→ यह अफ्रीका तथा प्रायः द्वीपीय भारत के तटों के बीच 12000 से 18000 फीट की गहराई तक विस्तृत है।
(iii) सोमाली द्रोणी :→ सोकोत्रा, चैगोस, सेन्टपाल तथा सेचलीस कटकों के मध्य स्थित है। इसकी गहराई 12000 फीट है।
(iv) मारीशस द्रोणी :→ इसकी गहराई 12000 से 18000 फीट के मध्य है। यह एक लम्बी तथा चौड़ी द्रोणी है।
(v) नेटाल द्रोणी :→ यह मालागासी कटक तथा द० अफ्रीका के पूर्वी तट के मध्य स्थित है। इसकी गहराई 18000' है।
(vi) अटलांटिक भारतीय अन्टार्कटिक द्रोणी :— यह प्रिन्स एडवर्ड क्रोजेट कटक तथा अन्टार्कटिका महाद्वीप के मध्य स्थित है। इसकी गहराई 18000 फीट है।
(vii) अण्डमान द्रोणी :→ यह बंगाल की खाड़ी में स्थित है। इसकी गहराई 6000 से 12000 फीट की गहराई तक फैली है।

Scanned with CamScanner

(viii) भारत आस्ट्रेलिया द्रोणी :— यह द्रोणी कोकोस कीलिंग द्रोणी के नाम से प्रसिद्ध है। यह द्रोणी 10° अक्षांश से 50° द० तक विस्तृत है। इसकी गहराई 12000 से 18000 फीट के बीच है।

(ix) दक्षिण भारत अंटार्कटिका द्रोणी :→ यह द्रोणी तीन ओर से मध्यवर्ती कटक एवं दक्षिण में अंटार्कटिका द्वारा घेरा है।

<u>महासागरीय गर्त (Deeps)</u> :→ हिन्द महासागर के तली के क्षेत्रफल का लगभग 60% भाग अगाध सागरीय मैदान के रूप में है, परिणाम स्वरूप गर्तों की संख्या कम पायी जाती है। जावा द्वीप के सहारे स्थित सुण्डा गर्त सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

2. अन्ध महासागर का नितल उच्चावच (Atlantic Ocean)

<u>स्थिति</u> :→ पश्चिम में उ० अमेरिका तथा द० अमेरिका, पूर्व में यूरोप तथा अफ्रिका के मध्य में स्थित अन्ध महासागर 820 लाख वर्ग K.m. क्षेत्र में विस्तृत है, जो सम्पूर्ण विश्व के क्षेत्रफल का 1/6 भाग है। इसका आकार अंग्रेजी के 'S' अक्षर के समान है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि यह प्रारम्भ में उ० तथा द० अमेरिका, यूरोप तथा अफ्रिका से मिले थे। बाद में महाद्वीपीय प्रवाह के कारण उ० तथा द० अमेरिका अलग होकर पश्चिम दिशा में प्रवाहित हो गये जिसके कारण अन्ध महासागर का निर्माण हुआ। यह 35° उ० अक्षांश पर पू० से प० चौड़ाई 5420 K.m. है। भूमध्य रेखा की ओर यह निरंतर पतला होता चला गया है। अन्ध महासागर के समस्त क्षेत्रफल का 24% भाग 4800 K.m. से कम गहरा है।

<u>महाद्वीपीय मग्न तट (तल)</u> :→ इस महासागर में मग्न तट अपार और चौड़ा है। मग्न तट दोनों के तटों पर प्रायः विस्तृत है। कहीं पर इनकी चौड़ाई 80 K.m. अधिक हो जाती है। तो वहीं पर 1 से 2 K.m. रह जाती है जहां कहीं भी तट के पास पर्वत की स्थिति देखने को मिलती है, वहां पर मग्न तट संकुचित हो जाते हैं। मग्नतट स्थित सीमान्त सागरों में हडसन की खाड़ी, बाल्टिक सागर, उ० सागर, डेविस जल डमरू, डेनमार्क जलडमरू मध्य आदि प्रमुख हैं। अन्ध महासागर के आन्तरिक सागरों में कैरेबियन सागर, रूम सागर प्रमुख है। मग्न तट स्थित द्वीपों में ब्रिटिश द्वीप, न्यूफाउंडलैंड, पश्चिमी द्वीप समूह-चाप, आइसलैंड, बरमुडा, सेन्ट हेलेना, ट्रिनीडाड, फाकलैंड, ग्रीनलैंड, द० आर्कनीज, जार्जिया सेण्डविच, कनारी, केप वर्ड आदि प्रमुख हैं।

<u>मध्य अटलांटिक कटक (Mid Atlantic Ridge)</u> :→ मध्य अटलांटिक कटक उ० में आइसलैंड, द० में बोवेट द्वीप तक 'S' अक्षर के आकार में 14,400 K.m लम्बी फैली है। तथा कहीं भी सागर तल से 4000 मीटर से नीचे नहीं है। यद्यपि कटक कभी प० तो कभी पूर्व की ओर झुक जाती है, परन्तु इसकी मध्यवर्ती स्थिति सदा बनी रही है।

<u>द्रोणी (Basins)</u> :→ मध्यवर्ती अटलांटिक कटक द्वारा अन्ध महासागर दो विस्तृत द्रोणियों में विभक्त हो जाता है। इन दो वृहत द्रोणियों में पुन: कई छोटी-2 द्रोणी भी पायी जाती हैं जो निम्न हैं —

(i) <u>लेब्राडोर द्रोणी</u> :— यह 40° से 45° उ० अक्षांश के मध्य फैली है। इसकी गहराई 4000 मीटर है।
(ii) <u>उ० अमेरिकी द्रोणी</u> :— यह उ० अन्ध महासागर की सबसे बड़ी द्रोणी है। इसकी गहराई 5000 मीटर है।
(iii) <u>ब्राजील द्रोणी</u> :— यह भूमध्यरेखा से 30° द० तथा द० अमेरिका के तट तथा पारा उभार के मध्य स्थित है।
(iv) <u>स्पेनिश द्रोणी</u> :— इसकी गहराई 5000 मीटर है। इसका विस्तार 30° से 50° उ० अक्षांश के बीच है।
(v) <u>केपवर्ड द्रोणी</u> :→ यह 10° से 23½° उ० अक्षांशों के बीच स्थित है। इसकी गहराई 5000 मीटर है।
(vi) गायना द्रोणी :— इसकी गहराई 4000 से 5000 मीटर है।
(vii) <u>अंगोला द्रोणी</u> :→ अफ्रिका के तट से प्रारम्भ होकर उ० पू० से उ० प० दिशा वालविस कटक तक 5000 मीटर की गहराई तक फैली है।
(viii) <u>केप बेसिन</u> :— यह 25° से 45° द० अक्षांश के मध्य अफ्रिका के पश्चिम में स्थित है।
(ix) <u>अगुलहास द्रोणी</u> :— उत्तमाशा अन्तरीप के द० में 40° से 45° द० अक्षांश के मध्य इसका विस्तार है।

<u>अन्ध महासागर के द्वीप</u> :→ यहाँ के प्रमुख द्वीप ब्रिटेन, न्यूफाउण्डलैंड, आइसलैंड, फैरोस, फाकलैंड, द० आरकेनीज, ग्रेट लैंड जोर्जिया, सेंडविच एजोर्स, ऐसेन्शन, ट्रिस्टन डी कुन्हा, सेन्ट हेलेना, ट्रिनिडाड, मेडिरिया, कनारी, केपवर्ड आदि।

<u>सीमान्त सागर (Marginal Seas)</u> :→ अन्ध महासागर के सीमान्त सागरों में रूम सागर, कैरेबियन सागर, मेक्सिको की खाड़ी, बाल्टिक सागर, उत्तरी सागर, बैफिन की खाड़ी, हडसन की खाड़ी आदि प्रमुख हैं।

Scanned with CamScanner

प्रथम पत्र

Unit - V

प्रवाल भित्ति

786 A

(15) Gulam Haider 26/1/93

Coral Reef

समुद्र में अनेक प्रकार के जीव पाये जाते हैं। इन जीवों में प्रवाल या मूँगा प्रमुख है। इसका अंग आकार शैवाल और स्पंज के समान होता है। प्रवाल भित्ति एक विशेष प्रकार के छोटे जीवों के मृत शरीर से बनी है। जमती है। इन जीवों में चूने का अंश अधिक होता है। इन्हें परस्पर सटने का स्वभाव होता है। जब ये कीड़े मर जाते हैं, तो उनके अवशेष समुद्र के तल में संचित होते रहते हैं। उन पर नये जीवों के अवशेष भी एकत्रित होते रहते हैं। इस प्रकार प्रवाल भित्ति की वृद्धि मक्खियों के छत्ते की भाँति होती रहती है। कालान्तर में यह जल के ऊपर आ जाती है। ऊपरी भाग और दबाव के कारण ये पत्थर की भाँति कठोर हो जाते हैं। और यह श्रेणियों के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं, जिन्हें प्रवाल भित्ति कहते हैं।

प्रवाल का क्षेत्र

प्रवाल के उत्पत्ति के लिए कुछ भौगोलिक सुविधाओं का होना आवश्यक है। यह जीव गर्म जल में ही उत्पन्न होते हैं। इसके लिए कम से कम ताप 24°C चाहिए। प्रवाल जल के बाहर जीवित नहीं रह पाती। अतः प्रवाल सदैव सागर की तली तक पायी जाती है। लेकिन जल की गहराई 45 मी० से अधिक नहीं होना चाहिए। इन कीड़ों की उत्पत्ति में नदियों द्वारा तलछट निक्षेप का होना वर्जित है। यह 30° उ० अक्षांश से 30° द० अक्षांश तक इनका विस्तार पाया जाता है। प्रशान्त महासागर और हिन्द महासागर इसके प्रमुख क्षेत्र हैं। आन्ध्र महासागर में ब्राजील के समुद्र तट से कुछ दूर तथा पश्चिमी द्वीप समूह के ~~समुद्र के~~ समुद्रों में भी मिलते हैं।

प्रवाल भित्ति की रचना के लिए आवश्यक दशाएँ

प्रवाल जीव एवं भित्तियाँ सम्पूर्ण सागरों में नहीं पाये जाते हैं, बल्कि इनके विकास के लिए कुछ विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियाँ होती हैं। जहाँ प्रवाल या मूँगे के कीड़े उत्पन्न होते हैं, जिन परिस्थितियों में प्रवाल के कीड़े जन्म लेते हैं, वे निम्नलिखित हैं →

(i) **औसत गहराई :→** छिछले समुद्र प्रवाल जीवों के लिए उत्तम स्थान होते हैं। इसके लिए 60 मी० से 100 मीटर की गहराई वाले समुद्री क्षेत्र उचित रहते हैं। इस गहराई में सूर्य का प्रकाश तथा सरलता पूर्वक पहुँच जाता है। फोटोसिन्थेसिस (Photosynthesis) क्रिया इस भाग में सक्रिय रहती है। अधिक गहराई में प्रवाल-भित्ति मर जाती है, क्योंकि इसमें सूर्य की प्रकाश प्रविष्ट नहीं हो पाती और प्रवाल के लिए उचित आक्सीजन भी नहीं मिल पाती।

(ii) **तापक्रम :→** प्रवाल सदा उपयुक्त तापमान में ही बढ़ते हैं। अतः समुद्र जल का तापमान 70° फा (21°C) के लगभग होना चाहिए। ऐसा तापमान कर्क और मकर रेखाओं के मध्य स्थित है। प्रवाल न अति उष्ण और न अति ठंडे जल में पनप पाता है।

(iii) **शान्त जल :→** प्रवालों की उत्पत्ति मुख्यतः उन्हीं क्षेत्रों में पायी गयी है, जहाँ शान्त समुद्र जैसा हो, तीव्र धाराओं का क्षेत्र एवं तीव्र तरंग व लहरों के समुद्री भाग में प्रवाल जीव जन्म नहीं लेते हैं। लेकिन जहाँ लहरें एवं धारायें उपयुक्त बहती हैं वहाँ ऐसे पदार्थ बहाकर लाती हैं, जो प्रवालों की वृद्धि और विकास में सहायक होती हैं।

(iv) **स्वच्छ जल :→** प्रवाल के विकास के लिए स्वच्छ जल चाहिए, क्योंकि जिस जल में लवणता अधिक होती है उसमें प्रवाल का मुख बन्द हो जाता है और वह मर जाता है। अतः प्रवालों के लिए जल में लवणता की मात्रा 20 से 25% तक होनी चाहिए। इससे अधिक लवणता में प्रवाल समाप्त हो जाते हैं। स्वच्छ जल में कैल्शियम कार्बोनेट की मात्रा पायी जाती है, जो प्रवालों की भोजन होती है।

(v) **अवसादों की न्यूनता :→** प्रवाल के उत्पत्ति के लिए अवसादहीन, स्वच्छ जल की आवश्यकता पड़ती है। गंदा जल प्रवाल के विकास में बाधक होता है। नदियों के मुहानों में गंदे जल एवं अवसादों की अधिकता से प्रवाल का समुद्री तल में जन्म लेते हैं। इस लिए पश्चाती क्षेत्रों में एवं गंदे जल की अपेक्षा स्वच्छ एवं शान्त समुद्रों में जल की उत्पत्ति होती है।

(vi) **समुद्री प्लेट फार्म या चबूतरा :→** प्रवाल जीवों के उत्पत्ति के लिए समुद्री प्लेट फार्म का होना अति आवश्यक है। इसी धरातल पर प्रवाल के कीड़े जन्म लेते हैं। तथा झुण्ड के रूप में विकसित होते हैं। सामान्यतः ये प्रवाल ज्वालामुखी क्षेत्र वाली चट्टानों के ऊपर ही विकसित होते हैं। जो ज्वालामुखी चट्टानें समुद्री क्षेत्र में 100 मीटर तक की गहराई वाले क्षेत्र में फैली हैं वहीं पर इनकी उत्पत्ति होती है।

उत्पत्ति एवं बनावट के अनुसार प्रवालों का वर्गीकरण

1. — अनुतटीय/तटीय प्रवाल-भित्ति (Fringing Reef) :→ जो भित्ति किसी महाद्वीप अथवा द्वीप के बिल्कुल निकट बनी हुई हो वह तटीय प्रवाल भित्ति कहलाती है। ऐसी भित्ति की रचना समुद्र के निम्न जल सीमा तक सीमित रहती है। अतः यह थोड़ा जल में रहती है। इसकी ऊपरी भाग समान तथा ऊबड़ खाबड़ होता है। इसका सागरवर्ती भाग खड़ा एवं तीव्र ढाल वाला होता है। भित्तियाँ यद्यपि स्थलीय भाग से सटी रहती हैं, परन्तु कभी कभी इनके तथा स्थल भाग के बीच अवकाश हो जाने के कारण इनमें छोटी लैगून का निर्माण हो जाता है जिन्हें बोट चैनल कहा जाता है। प्रवाल भित्तियाँ प्राय: कम चौड़ी तथा सँकरी होती हैं जहाँ कहीं भी नदी सागर में गिरती है तो, वहाँ पर तटीय प्रवाल भित्तियों का क्रमभंग हो जाता है। इस तरह की भित्तियाँ सण्डाऊ द्वीप, दक्षिणी फ्लोरिडा, मलेशिया द्वीप के सहारे पायी जाती हैं।

तटीय प्रवाल भित्ति

2. — अवरोधक प्रवाल भित्ति (Barrier Reef) :→ जो प्रवाल भित्ति समुद्र से कुछ हटकर बनती है। उसे अवरोधक प्रवाल भित्ति कहते हैं। ये तट के समानान्तर काफी लम्बाई में एक भित्ति के रूप में होती है, इसकी चौड़ाई 800 मीटर तक हो जाती है। इसकी बाहरी ढाल 45° का होता है। परन्तु सामान्यतया यह ढाल 15° से लेकर 25° तक रहता है। लहरों एवं तरंगों के कारण अवरोधक प्रवाल की भित्तियाँ कई स्थानों में कट जाती हैं, जिसके कारण जल का प्रवाह समुद्री भागों से लैगून झील की ओर रहता है। अवरोधक भित्तियाँ और तट के मध्य चौड़ाई (5-6 k.m) तथा गहरे (75 M) प्राप्य होते हैं। इन भित्तियों का प्रसार बाहर की ओर अधिक नहीं होता। कभी 2 एक भित्ति के सहारे दूसरी भित्ति भी बन जाती है। जब कभी ये समुद्र जल की सतह ऊपर उठ जाती है तो बाहर दिखाई देने लगती हैं। संसार में अवरोधक प्रवाल भित्तियाँ कई स्थानों पर मिलती हैं। सबसे बड़ी अवरोधक भित्ति आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट के समानान्तर 1920 K.m की लम्बाई में तट से 112 K.m दूर तक अवरोधक प्रवाल भित्ति फैली है, जो ग्रेट बेरियर रीफ के नाम से पुकारी जाती है। न्यू कैलीडोनियन भित्ति दूसरी बड़ी भित्ति है।

अवरोधक

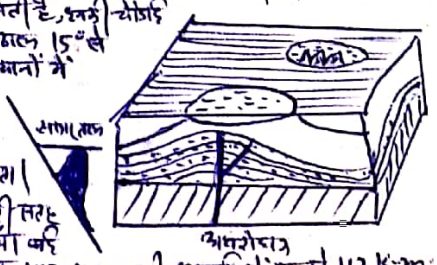

Scanned with CamScanner

3. वलयाकार प्रवाल भित्ति (Atoll Reef) :→ जिन प्रवाल भित्तियों की रचना अंगूठी के आकार या घोड़े के नाल की होती है, उन्हें वलयाकार भित्ति कहा जाता है। डेविस ने इन भित्तियों को प्राकृतिक की आश्चर्यजनक रचना कहा है। ये भित्ति चारों ओर लगातार नहीं होती ये कुछ स्थानों पर खुली हुई होती है। यहां अनूप समुद्र से जुड़ा रहता है, जिससे समुद्र का जल बराबर अनूप में प्रवेश करता है। अनूप के बीच 2 में कभी 2 द्वीप भी मिलते हैं। आकृति के अनुसार वलयाकार प्रवाल को तीन भागों में बांट सकते हैं।→

(i) — प्रथम प्रकार के प्रवाल की वलयाकार या घोड़े के नाल के समान (Horse Shoe) आकृति होती है तथा बीच में कोई भी द्वीप स्थित नहीं रहता। वलयाकार भित्ति के बीच में लैगून झील स्थित रहता है।

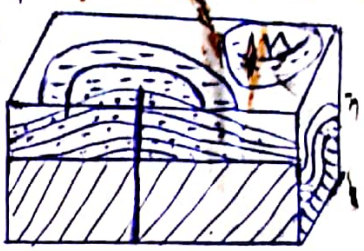

(ii) — दूसरे प्रकार की प्रवाल की भित्ति चारों तरफ स्थित रहती है तथा बीच में कोई द्वीप रहता है। द्वीप के चारों तरफ भी प्रवाल भित्ति विकास सम्भव है।

(iii) - तीसरा प्रवाल द्वीप या वलयाकार प्रवाल द्वीप आन्तिम स्वरूप है। प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में कई प्रवाल द्वीप समूह मौजूद हैं।

प्रवाल के आधार तल में रेत, कंकरी तथा काले रंग का घुलनशील कीचड़ फैला रहता है। इसी पर वलयाकार प्रवाल की नींव पड़ती है।

अतः वलयाकार प्रवाल भित्ति (Atoll) एण्टीलीज सागर, लाल सागर, इन्डोनेशिया सागर, चीन सागर तथा आस्ट्रेलिया सागर में अधिकता से पाये जाते हैं। फुनाफुटी एटाल एक प्रसिद्ध एटाल है।

प्रवाल भित्ति के उत्पत्ति से सम्बंधित सिद्धान्त

1. — डार्विन का निमज्जन/अवतलन सिद्धान्त :→ चार्ल्स डार्विन ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन 1837 में किया तथा 1842 में इसमें संशोधन किया। इनके सिद्धान्त के अनुसार सागरीय तट से लगभग 10-15 मीटर की गहराई पर सर्वप्रथम मूंगों की किड़े या प्रवाली पुर्वांक (Coral Polyp) किसी द्वीप के चारों तरफ अनुतटीय प्रवाल भित्ति बनना प्रारम्भ करते हैं। यह क्रिया तब तक चालू रहती है जब तक अनुतट प्रवाल की संरचना द्वीप के बराबर न हो जाये। यदि किसी कारण द्वीप जल में धस जाता है तो उसके साथ ही प्रवाल भी उसी अनुपात से नीचे धस जाता है। द्वीप के नीचे धसने में उसके तलका में विकास नहीं होता, परन्तु इसके विपरीत प्रवाल के नीचे धसते ही उसका विकास क्रम यथावत चलता ही रहता है क्योंकि कैल्शियम कार्बोनेट की उपस्थिति होने से प्रवालों के विकास उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है क्योंकि कैल्शियम कार्बोनेट समुद्री जल में अत्यधिक मात्रा में रहता है जिसको प्रवाल अपना भोजन बनाते हैं एवं समुद्र तल से बाहर खिंचते रहते हैं। बाहर की तरफ प्रवालों का विकास इसी इतनी अधिक गति से होता है कि अवसादों से भरने या दबने का डर नहीं रहता है।

डार्विन ने बताया की प्रवाल भित्ति के लिए सर्वप्रथम एक आदर्श चबूतरे पर की उत्पत्ति होती है तथा इस पर प्रवाल ऊपर की ओर बढ़कर सागर तल तक पहुंच जाते हैं जिससे तटीय प्रवाल भित्ति का निर्माण होता है। इसके बाद स्थलखण्ड में अवतलन हो जाता है, जिसके कारण प्रवाल अधिक गहराई में पहुंच जाते हैं। परिणाम स्वरूप जीवित रहने के लिए तथा अपने भोजन को एकत्रित करने के लिए इनमें ऊपर तथा बाहर की ओर तेजी से वृद्धि होती है। तट के पास वृद्धि रुक जाती है, क्योंकि वहां भोजन का अभाव होता है। परिणाम स्वरूप तट तथा भित्ति के बीच लैगून बन जाती है और अवरोधक प्रवाल (Barrier reef) का निर्माण होता है। पुनः स्थलखण्ड का अवतलन होता है, तथा द्वीप पूर्णतया जलमग्न हो जाता है और उसके चारों ओर वलयाकार प्रवाल भित्ति (एटाल) का निर्माण हो जाता है।

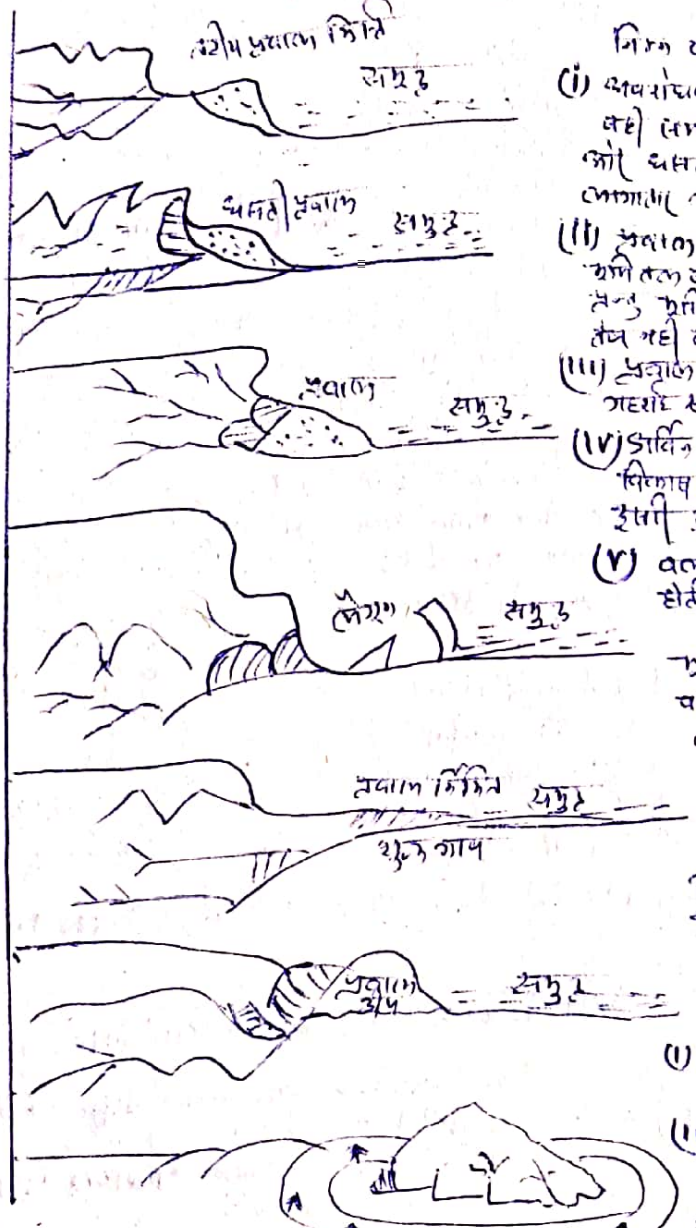

अवतलन के स्वरूप प्रवाल रोधिका एवं प्रवाल द्वीप

अतः डार्विन का कहना है कि उपरोक्त साक्ष्य से निम्न बातें स्पष्ट होती हैं→

(i) अवरोधक प्रवाल भित्ति और वलयाकार प्रवाल भित्ति की रचना वहीं सम्भव हो सकती है और वहीं हो सकती है जहां भूमि धीरे धीरे धसती रही हो, चाहे भूमि का यह धसाव काफी धीमा, परन्तु लगातार और क्रम से हुआ हो।

(ii) प्रवाल भित्तियों की रचना भूमि भाग के निकट ही होती है तथा भूमि तल के निरंतर नीचे धसते रहने से ही वर्तमान आकार बन जाते हैं परन्तु भूमि का यह धसाव भित्ति के ऊपर उठने की गति से अधिक तेज नहीं होता।

(iii) प्रवाल भित्तियों के बीच बने अनूप समाकृत भाग होते हैं जिनकी गहराई साधारण और नितल समतल होते हैं।

(iv) डार्विन के अनुसार तटीय अवरोधक और वलयाकार प्रवाल भित्ति विकास की भिन्न अवस्थाएं हैं, जो क्रमागत रूप से एक के बाद दूसरी उत्पन्न होती रही हैं।

(v) वलयाकार प्रवाल भित्ति की रचना किसी द्वीप के चारों ओर होती है।

अतः डार्विन की निमज्जन साक्ष्य का डाना आगस प्रगामी शास्त्री ने समर्थन किया। अपनी खोजों के आधार पर यह भी लगभग इसी निष्कर्ष पर पहुंचा लेकिन उसने एक बात की ओर विशेष संकेत किया है, जो डार्विन के साक्ष्य में नहीं आयी थी। आजकल सभी लोग इसे स्वीकार करते हैं कि डूबी हुई घाटियां धसाव के प्रतीक हैं। अतः उसने प्रशान्त महासागर के द्वीपों की घाटियों का धरातलीय अनावरण द्वारा और अनुतटीय खाड़ियों का निमज्जन द्वारा स्पष्टीकरण किया।

आलोचना

जहां एक ओर डार्विन ने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट किया वहीं इसकी आलोचना भी की गयी जो इस प्रकार है→

(i) प्रशान्त महासागर में कई वलयाकार रचनाएं ऐसे स्थानों पर पायी जाती हैं जहां निमज्जन का कोई चिन्ह प्राप्त नहीं है।

(ii) डार्विन के अनुसार अवरोधक एवं वलयाकार प्रवाल रचनाओं की गहराई प्रायः दो हजार फुट या अधिक होनी चाहिए परन्तु मरे के मत के अनुसार ऐसी प्रवाल रचनाओं का ऊपरी 30 फैदम भाग ही प्रवाल द्वारा बना होता है जो वहां पाये जाते हैं।

(iii) कभी कभी प्रवाल अधिक गहराई पर पायी जाती हैं जो ज्वालामुखी पठार के ऊपर उगी हुई पायी जाती है, न कि डूबी हुई चोटी पर।

डेली का हिम नियंत्रण सिद्धान्त :→

डेली ने डार्विन द्वारा प्रवालों की उत्पत्ति के विषय में जो सिद्धान्त प्रतिपादन किया था उसके समर्थन में अपना सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जो हिम नियंत्रण (Glacial Control) सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है। डेली ने अपने सिद्धान्त में स्पष्ट किया कि सबसे अत्यधिक हिमयुग रहा उस समय उष्ण-कटिबंधीय क्षेत्रों का समुद्री तल 60 से 90 मीटर नीचे रह गया। डेली ने हवाई एवं अनुतटीय भित्तियों का अध्ययन करके यह स्पष्ट किया कि सभी लैगून के प्लेटफार्म की एक समान है तथा अधिकतर लैगून की गहराई 60-90 मीटर तक आंकी गयी है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि इन प्लेटफार्मों की उत्पत्ति का मुख्य कारण यह है कि समुद्र तट पर जो स्थायी द्वीप थे उनका अपरदन लहरों से होने के फलस्वरूप हुआ।

डेली ने यह स्पष्ट किया कि इन्हें सागरों में स्थायी द्वीपों की उत्पत्ति मुख्यतः हिमानी युग (Glacial Period) में होती है। तथा जब हिमानी की भारी मात्रा पृथ्वी की धरातल पर फैल जाती है तो इससे पृथ्वी की पपड़ी नीचे धंस जाती है तथा सम्पूर्ण भूभाग जल मग्न हो जाता है। कुछ ऊंचे पर्वत एवं भूभाग शेष रहते हैं जिसकारण उनके भू-भागों में जहां भौगोलिक दशाएं उपलब्ध हो वहां प्रवाल के जीवाणुओं की उत्पत्ति धीरे: धीरे: होने लगती है। प्रवाल के जीवाणुओं की उत्पत्ति विशेषकर निम्न तल प्लेटफार्म वाले क्षेत्र में होती है। जब बर्फ पिघलने लगती है या हिमानी समाप्त होने लगता है तो बर्फ के पिघलने से पृथ्वी की पपड़ी धीरे 2 ऊपर उठने लगती है तो निम्न तल प्लेटफार्म वाले क्षेत्र में जो प्रवाली जीव होते हैं, वे समाप्त हो जाते हैं तथा उसके निचले भाग के सभी जीव समाप्त हो जाते हैं। यदि ऊपरी भाग जल के नीचे हुए तो उसमें यहां प्रवालों की उत्पत्ति होती है। यदि पृथ्वी की पपड़ी ऊपर उठती है और शुष्क भाग में बदल जाते हैं तो सभी प्रवाल शुष्क भू-भाग में बदल जाते हैं

डेली के अनुसार प्रवाल भित्ति का निर्माण

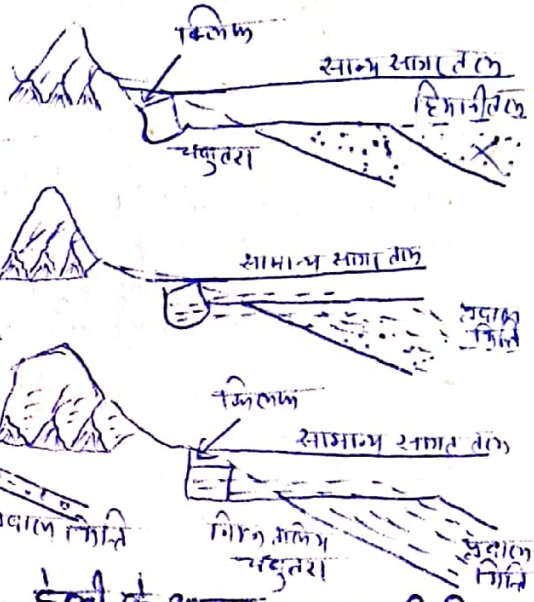

मर्रे का स्थिर ~~सिद्धान्त~~ स्थल सिद्धान्त

सर जान मर्रे 1880 में प्रशांत के निमज्जन सम्बन्धी विचार का खण्डन कर नवीन मत का प्रतिपादन किया। मर्रे के अनुसार प्रवाल भित्तियों की उत्पत्ति समुद्र के अन्दर उन पठारों पर होती है जहां पर पहले ज्वालामुखी क्रिया सक्रिय रही हो तथा ज्वालामुखी पर्वतों की चोटी जो वियासी के नीचे दबी रहती है उन पर लगभग 40 मीटर की कम गहराई पर मूंगों की क्रिया के द्वारा भित्तियों की उत्पत्ति होती है रहती है। प्रवाल भित्तियों का ढाल भू-भाग की तरफ रहता है तथा इसमें जो लैगून जैसी झील बनती है उसकी भीतरी भाग में गहराई अधिक होने से प्रवाल के अवरोधन होता रहता है। मर्रे का मत है कि यदि कहीं पर मूंगों की उपस्थिति मलबे से ही इसकी नींव पड़ जाती है तो जब लैगून जैसा आकार का निर्माण हो जाता है तो इसके बीच में चूना युक्त पदार्थ होता है। उसके घुल जाने के उपरान्त इसके चारों तरफ केवल प्रवाल की वलय का ही भाग शेष रह जाता है। मर्रे के सिद्धान्त में कुछ सत्यता यह है कि पूर्व निर्मित प्लेटफार्म के ऊपरी भाग में प्रवालका प्रवाल एवं अनुतटीय प्रवाल भित्तियाँ मुख्य स्थान रखती हैं।

मर्रे ने बताया कि प्रवाल 30 फैदम (180 फीट) की गहराई तक पनप सकते हैं। सागर तल स्थिर होते हैं सागर तल के नीचे अनेक अतः सागरीय चबूतरे ज्वालामुखी शिखर द्वीप आदि होते हैं जिनके ऊपर प्रवाल भित्ति का निर्माण होता है। यदि स्थल प्रवाल गहराई (Coral Depth) (जहां तक प्रवाल जिन्दा रह सकते हैं) से ऊपर या नीचे होते हैं तो उनकी प्राप्ति भिन्न रूपों में होती है→

मर्रे के अनुसार प्रवाल भित्ति का निर्माण

(i) यदि ज्वालामुखी शिखर या द्वीप प्रवाल तल (सागर से 180 फीट नीचे) से ऊपर है, तो उसका अपरदन तथा घुलन क्रिया द्वारा अवनयन (Lowering) हो जाता है।

(ii) यदि वह प्रवाल तल से नीचे है, तो उस पर अतः सागरीय पेलैजिक जमाव होता है, जिस कारण आवश्यक गहराई (30 फैदम) प्राप्त हो जाता है।

30 फैदम की गहराई प्राप्त हो जाने पर प्रवाल अपना घरौंदा बनाना प्रारम्भ कर देते हैं तथा प्रारम्भ में तटीय प्रवाल भित्ति (fringing reef) का निर्माण होता है। प्रारम्भ में प्रवाल का विकास ऊपर की ओर तथा आगे चलकर बाहर की ओर होने लगता है तटीय प्रवाल में निरंतर विकास के कारण अवरोधक प्रवाल भित्ति (Barrier reef) का निर्माण होता है। स्थल प्रवाल भित्ति के बीच के भाग के घुल जाने के कारण लैगून का निर्माण होता है। अतः सागरीय चबूतरों के शीर्ष पर प्रवाल के चतुर्दिक विकास के कारण एटॉल का निर्माण होता है।

Scanned with CamScanner